मल्लिका

जरासंध

मल्लिका



अनुवादक
व्रजगोपालदास अग्रवाल

भूमिका

संसार में जो वस्तु जितनी दुर्ज्ञेय और दुर्लंघ्य होती है, उसके विषय में आदमी के मन में उतना ही कौतूहल रहता है। मेरे लिए यह सिर्फ एक दार्शनिक सत्य नहीं। श्रीकान्त की भाषा में 'बार-बार ठेके शेखा सत्य' (बार-बार अनुभूत सत्य) है। हिसाब लगाया जाए तो पता चलेगा कि तीन भाग 'लौह-कपाट' लिखने में मुझे जितना समय और शक्ति खर्च करनी पड़ी थी, उसकी तुलना में गत दस वर्षों में उसके पाठक-वर्ग के असंख्य प्रश्नों के जवाब देने में समय तो शायद कुछ कम लगा हो, मगर शक्ति और श्रम कहीं अधिक लगाना पड़ा है। वह जवाब नहीं, एक प्रकार की जवाबदेही है।

मगर उन सारे प्रश्नों के पीछे क्या सिर्फ कौतूहल या क्यूरिओसिटी है? बीच-बीच में मुझे लगा है कि नहीं, और भी कुछ है—कोई गहरी रुचि है, जो उसीके लिए जाग्रत् होता है, जिसे हम प्रियजन या प्रिय वस्तु कहते हैं। यदि यही बात है, तो मैंने इन तीन खण्डों में जिन लोगों की बात कही है, उन्हें शायद मेरे कुछ पाठक-पाठिकाओं के निकट आत्मीयजनों के रूप में स्वीकृति मिली है। इसके लिए मेरा गौरव चाहे जितना

हो, कृतित्व बहुत ही सामान्य है, इस बात के प्रति मैं पूरी तरह जागरूक हूं। मैं जानता हूं, इसके मूल में मेरे वर्णित चरित्रों की विचित्र प्रकृति एवं आश्चर्यजनक जीवन है।

एक विशेष नारी-चरित्र को लेकर मेरे पाठक-समुदाय के प्रश्नवाणों ने मुझे बुरी तरह बेधा है। उसका नाम है मल्लिका—'लौह-कपाट', द्वितीय पर्व, चतुर्थ परिच्छेद में वर्णित दीर्घ कहानी की नायिका। इन प्रश्नों की भाषा-शैली अलग-अलग होते हुए भी जाति प्रायः एक ही है और उनमें जिज्ञासा की जगह शिकायत का स्वर ही अधिक मुखर है। अर्थात् वे सिर्फ प्रश्न नहीं, प्रश्नवाण; जिज्ञासा के बहाने शिकायत और अभियोग।

" 'लौह-कपाट' के ढेर सारे स्त्री-पुरुषों के बीच इस लड़की को क्यों ढकेल दिया? उन लोगों के साथ इसका मेल कहां है?"

"मल्लिका-चरित्र की एक जो विशिष्टता है, वह लौह-कपाट के अन्यतम चरित्र की दृष्टि से कतई स्पष्ट नहीं हुई।"

"मल्लिका हर दृष्टि से अनन्य है; उसे अन्य सब कैदियों के साथ एकासन पर बिठाकर क्या उसके साथ अन्याय नहीं किया गया?"

"मल्लिका-मतीश की आश्चर्यजनक कहानी में जो सब उपादान हैं, उनसे एक बहुत अच्छा उपन्यास लिखा जा सकता था। ऐसा न कर उसे काट-छांटकर एक अध्याय में भर देने का उद्देश्य क्या है?"

" 'मल्लिका' आपका सबसे अधिक करुण, सबसे ज्यादा मधुर चरित्र है। उसकी बात और भी सुनने की

इच्छा करती है। यह कहानी इतनी जल्दी खत्म क्यों कर दी ?"

"लौह-कपाट के अन्यान्य चरित्रों की सृष्टि करने में आपने बड़े दरदी मन का परिचय दिया है। मल्लिका की बारी में उस दृष्टि में कंजूसी दिखाई दी है। लगता है, जैसे छुटकारा पाने की नीयत से पूरा किया है।"

"मैं कहूंगा, मल्लिका आपकी 'काव्य की उपेक्षिता' है। आपने जानबूझकर उसकी अवहेलना की है।" इत्यादि···

इनके उत्तरों के प्रसंग में 'लौह-कपाट' पर डॉक्टर श्रीकुमार बंद्योपाध्याय महाशय की कुछेक उक्तियां उद्धृत करना चाहता हूं—विज्ञापन के उद्देश्य से नहीं (तब तो विशेष रूप से प्रशंसा-ज्ञापक अंश छांटे जाते), अपना वक्तव्य सुगम करने के लिए। 'कारा साहित्य' शीर्षक प्रबंध में उन्होंने कहा है, " 'लौह-कपाट' ठीक उपन्यास नहीं, बहुत-से उपन्यासधर्मी खण्डों और स्वयं सम्पूर्ण कहानियों की समष्टि है। इससे उपन्यास को सुविधा है, असुविधा नहीं। घटनाओं का सूत्र नहीं पकड़ना पड़ेगा, कहानी और चरित्रों की संगति नहीं दिखानी पड़ेगी, चरम परिणति का दायित्व ग्रहण नहीं करना पड़ेगा। लेखक की दृष्टि में जितना आया है, उसमें जो आवेग और अन्तर्द्वन्द्व घनीभूत हो उठा है, उसे चित्रित करके ही लेखक की छुट्टी, दायित्व की इति। जहां यवनिका-पतन हुआ है, उसके और आगे जाने का हुक्म कौतूहल को नहीं है। गोया कि यह साहित्य-राज्य में जेल-कोड का प्रयोग है।"

पर लगता है कि मेरे पाठकों का एक दल कम से

कम मल्लिका के वक्त इस जेल-कोडवाले अनुशासन को मानने के लिए तैयार नहीं। कारण शायद यही है कि इस आख्यायिका में जीवन की व्याप्ति और वैचित्र्य न होते हुए भी डॉक्टर बैनर्जी के शब्दों में 'जीवन-समालोचना की करुण समवेदना-स्निग्ध यथार्थता' कुछ परिमाण में निहित है। अन्यान्य चरित्रों की तुलना में इसमें उपन्यास के उपादान अधिक हैं, यह बात मैं अस्वीकार नहीं करता। सम्भवतः उपन्यास की 'असुविधा' से बचने के लिए ही उस दिन इसे 'हाथ-पैर बांधकर लौह-कपाट के घेरे में डाल दिया था' (एक पाठक का मत)।

कुछेक अव्यावसायिक नाट्य-संस्थाओं ने इस कहानी को नाट्य-रूप में विभिन्न रंगालयों में मंचस्थ किया है। रेडियो से भी इसका अभिनय प्रसारित हो चुका है। वह सब देखने-सुनने के बाद ऐसा लगा है कि कहानी को नाटक का आकार देने में उन लोगों को जो असुविधाएं हुईं—कथोपकथन आदि को लेकर—वे सब एक पूर्णांग उपन्यास हाथ में होने पर शायद टल सकती थीं।

पिछले कई वर्षों से बीच-बीच में मेरे मन में 'मल्लिका-उद्धार' की बात उठ रही है, मगर यह निहायत आसान काम नहीं। 'लौह-कपाट' के अंग से इस परिच्छेद को काटकर अलग कर देने से ही काम नहीं चलेगा, इसे फिर से नये रूप में गढ़ना पड़ेगा। अर्थात् यहां-वहां एकाध परिवर्तन नहीं, एकबारगी पुनर्गठन !

यह उसका मात्र रूपान्तर नहीं, नव जन्मलाभ है।

—जरासंध

और दो शब्द

'मल्लिका' के विषय में लेखक की इस नवीं भूमिका के बाद और कुछ कहना समीचीन नहीं जान पड़ता। मूल पुस्तक पढ़कर पाठकों ने जो प्रतिक्रिया व्यक्त की, वह कहां तक सही है, इस बात का निर्णय हिन्दी पाठक स्वयं करेंगे, मैं इतना ही कहना चाहता हूं।

इस पुस्तक के दूसरे उपन्यास 'बाघिन' की नायिका 'वनानी' नारी के भीतर छिपी वज्र-कठोरता का ज्वलंत उदाहरण है। प्रतिशोध की ज्वाला में उसका बाघिन-स्वरूप इस तरह निखरा है कि पाठक अभिभूत हुए बिना नहीं रह सकता।

पुस्तक के अनुवाद में श्रीमती संध्या मुखर्जी और सुश्री मंजु दासगुप्त से जो सहायता मिली, उसके लिए मैं दोनों का आभारी हूं।

—व्रजगोपालदास अग्रवाल

मल्लिका

रवीन्द्रनाथ ने अपनी 'काव्य की उपेक्षिताएं' में कहा है—'संस्कृत साहित्य में काव्य-यज्ञशाला के सीमाप्रदेश में जिन कुछेक अनादृताओं के साथ मेरा परिचय हुआ है, उनमें मैं उर्मिला को प्रधान स्थान देता हूं। सोचता हूं, इसका एक कारण यह है कि ऐसा मधुर नाम संस्कृत काव्य में और दूसरा नहीं।'

कवि की इस उक्ति से ही अनुमान लगा सकता हूं कि यह नाम न होता, तो सप्तकाण्ड रामायण की सुदीर्घ शोभायात्रा में वह चुपचाप चलने वाली अवगुंठिता वधू पर शायद उनकी नजर न पड़ती। उसके 'चिरदुःखाभिनम्र नम्र ललाट' करुणा-वारि सिंचन कर के इस 'उपेक्षिता' को हमारे हृदयासन पर बिठा गए हैं, उससे भी वह वंचित रह जाती।

मैं आज जिसकी बात बताने बैठा हूं, वह काव्य की उपेक्षिता नहीं, जीवन के निकट 'उपेक्षिता', संसार के निकट 'वंचिता' है। यदि उसका नाम एकाएक मेरा रास्ता रोककर खड़ा न हुआ होता, तो मैं भी उसकी उपेक्षा कर चला जाता। उर्मिला के साथ उसका मेल सिर्फ इसी बात में है।

उसके साथ मेरा परिचय किसी काव्य-यज्ञशाला अथवा साहित्य के कलासदन में नहीं हुआ। परिचय हुआ था ऐसी जगह, जहां यह नाम सिर्फ अप्रत्याशित नहीं, उस परिवेश में असंगत भी है। शायद यहीं अपनी

कारण था कि नाम के अन्तराल में जो व्यक्ति है, उसे भी जानने और उससे भी ज्यादा आविष्कार करने का नशा उस दिन मुझपर अधिकार कर बैठा था। सिर्फ माधुर्य का आकर्षण मुझे शायद इतनी दूर न ले जाता। जिस कहानी के परिचय में मैंने इतनी लम्बी-चौड़ी हांकी है, वह मेरे निकट भी अज्ञात रह जाती।

सन् चालीस-इकतालीस की बात है। एक पुलिस-अभियान को पूरा करने के लिए बड़ी जेल में तबादले पर आया हूं। तीन गांवों को लेकर दंगा हो गया है। बड़े पैमाने पर खून-खराबा, लूट, आगजनी और नारीमेध यज्ञ। सब कुछ हो चुकने के बाद यथारीति पुलिस का आविर्भाव। थोड़ा-सा अकारण गोली-वर्षण। तत्पश्चात् अंधाधुंध धरपकड़। जेल का लॉकअप-टोटल एक छलांग में कुछेक सौ से दो हजार तक जा पहुंचा है। रिकार्डरूम के रैक हटाकर अतिरिक्त स्टाफ के लिए जगह की गई है।

बिना जंगले के एक छोटे कमरे में हम तीन अफसर हैं। बीच में फैजुद्दीन साहब हैं, हम लोगों से कुछ सीनियर हैं, अतः उनकी मेज भी उसी मात्रा में खाली है। इस तरफ मैं हूं, उस तरफ अमल राहा। हम दोनों के आगे स्तूपाकार फाइलें रखी हैं। हम सभी नाम से 'एग्जिक्यूटिव', काम से बाबू हैं। दादा इसमें थोड़े-से व्यतिक्रम हैं। कलम रखकर बीच-बीच में लाठी लेकर निकल जाते हैं।

इसी तरह एक दिन करीब घंटाभर चहलकदमी करने के बाद लौटे, तो मेज पर नजर पड़ते ही चीख पड़े, "यह क्या? ल्यूनैटिक फाइल यहां क्यों? तुम भी क्या पागल हो!" कहकर उन्होंने एक बड़ा बंडल मेरी मेज पर फेंक दिया। मैंने थोड़ी रसिकता की चेष्टा करते हुए कहा, "मैं पागल हूं? अच्छा, आपत्ति नहीं। 'प्रतिभा' को साधारण लोग इसी नजर से देखते हैं।"

"इसी आनन्द में रहो," फैजुद्दीन साहब ने व्यंग्य के स्वर में कहा। "एक बार पढ़कर देखो न, क्या चीज है। दिमाग खराब कर देगा। केस यों बड़ा दिलचस्प है। कल थोड़ी नजर डाली थी। बड़े नामी घर की बहू है। खून किया था। बाद में पागल हो गई। देखो तो, किस तरह

में कमिट किया है—४७१ या ४६६ ?"

"यह सब क्या साप का मंत्र शुरू कर दिया ?"

"पढकर समझ जाओगे, सांप का मंत्र है या कौन-सा मंत्र है। असली प्रश्न यह है—असामी पागल-खूनी है, या खूनी-पागल ?"

हाथ का काम छोड़कर फाइल खीच ली। यहा-वहां स्याही के दागों से भरा बदरंग कवर है, जिसके किनारे फट-फटा गए हैं। बहुत-से हाथों के स्पर्श से मलिन हो गया है। और उसके ऊपर चलते-फिरते लिखा गया एक नाम है—मल्लिका। मल्लिका गागुली। ऐसा कोई नया नाम नहीं। शायद पहले भी सुना होगा। फिर भी आंखें उसपर स्थिर हो गईं। लगा कि यह सिर्फ नाम नहीं, चारो तरफ की इस मलिनता-राशि के बीच एक बिन्दु-निर्मल शुभ्रता है। सर्वव्यापी अशुचि के बीच थोड़ा-सा शुचि-स्पर्श है।

फैजुद्दीन साहब अपनी दराज में से एक 'क्रिमिनल प्रॉसीजर कोड' निकालकर मेरे आगे रखते हुए विस्मय के स्वर मे बोले, "यह क्या! कवर देखकर ही बेहोश हो गए ? यह लो, पहले ये दोनों सेक्शन अच्छी तरह पढकर देखो, नही तो केस अच्छी तरह नही समझोगे।"

उसी क्षण केस समझने जैसा मन मेरा नही था। उसका कोई तकाजा भी अनुभव नही किया। 'काव्य की उपेक्षिताएं' मे आदमी के माधुर्य-प्रसंग को लेकर कवि ने लिखा है—'उसे हम लोग सिर्फ इन्द्रियों द्वारा प्राप्त नही करते, उसकी कल्पना द्वारा सृष्टि करते हैं। नाम सिर्फ उस सृष्टि-कार्य मे सहायता करता है।' फाइल के ऊपर लिखे उस नाम का आश्रय लेकर मेरी कल्पना मे भी उसी तरह एक मानवी मूर्ति ने जन्म लिया और वह अक्षरों का आवरण भेदकर धीरे-धीरे मेरी आंखों के आगे आकर खड़ी हो गई।

मेरे मानस-लोक की मल्लिका। उसे मैंने मनपसन्द रूप दिया। नतमुखी तरुणी। अयत्न-क्लिष्ट दीर्घ क्षीण देह। माथे पर बिखरे रूखे केश; आखो मे उद्भ्रान्त दृष्टि। चेहरा दिनान्त के मल्लिका-फूल की तरह विषाद-मलिन।

खून क्यों किया था ? सम्भव है, जीवन की कोई जटिल प्र

खोल पाई हो; अन्तर् का कोई गहन द्वन्द्व न मिटा पाई हो। सोचकर मन उदास हो गया। किसी एक अदृष्टा-अपरिचिता रहस्यमयी नारी के विध्वस्त जीवन के साथ एक प्रकार की आत्मीयता का अनुभव किया।

तथ्य जो कुछ मिले, बड़े संक्षिप्त और अत्यधिक सरल थे। उनमें फैज़ुद्दीन साहब के प्रश्न का उत्तर तो शायद था, मगर वृद्धा पृथ्वी की उस चिरन्तन जिज्ञासा को उत्तर नहीं मिला—आदमी खून क्यों करता है? वह कौन-सी दुर्जेय प्रवृत्ति है, जिसकी प्रताड़ना से उसके हृदय में नर-रक्त तृषा जागती है; आंखों की पलकों पर उसका अनन्त काल का मानव-धर्म—दया-माया, स्नेह-प्रेम—सुन्न हो जाता है; जो हजारों साल की संस्कृति से तैयार हुए सभ्य मानव को एक क्षण में नखीदन्ती-श्रृंगी बना देती है?

कानून जितना कुछ देखता है, उसपर विचार करता है, वह उसका सिर्फ बाहरी रूप है; उसका काम, उसके हाथ-पैरों की अभिव्यक्ति है—तुमने यह किया है, यह नहीं किया। इस करने और न करने के अन्तराल में उसका जो चिररहस्यावृत अन्तर्लोक है, वहां विचारक (न्यायाधीश) की दृष्टि नहीं पहुंचती।

फाइल देखकर पता चला कि मल्लिका ने खून किया था। बाद में .स के हाथों में पहुंची, तो देखने में आया कि वह मानसिक रूप से अस्वस्थ है। विकृत मस्तिष्क वाले का मामला नहीं चलता। अभियोग का मर्म वह नहीं समझेगी। अभियोग के खिलाफ स्वयं का समर्थन करने की मनन-शक्ति भी उसके पास नहीं। सिविल सर्जन का मत है। 'She is not fit to stand her trial.' इसीलिए जज साहब ने मामले की सुनवाई स्थगित कर दी है।

यह विकृति यदि किसी दिन दूर हो जाती है, उसका मानसिक सन्तुलन लौट आता है, तो उसे फिर अदालत में जाकर खड़ा होना पड़ेगा और अपना प्राप्य दंड ग्रहण करना पड़ेगा। उसे स्वस्थ-स्वाभाविक करने के लिए जो कुछ आवश्यक है, उसका दायित्व भी सरकार का है। यही कारण है कि जज साहब ने मामला स्थगित करके ही अपना कर्तव्य खत्म नहीं किया, उसकी उपयुक्त चिकित्सा का आदेश भी दिया है।

मल्लिका का गंतव्य स्थान है—रांची पागलखाना। वहां जब तक उसके लिए स्थान निर्दिष्ट नहीं होता, उसे जेल में रहना पड़ेगा। रांची के रास्ते अनिश्चितकाल के लिए यह कारावास।

पिछले छः मास मल्लिका ने कलकत्ते की किसी बड़ी जेल में, जनाने फाटक में, एक छोटे निर्जन कमरे में काटे हैं। वहां उसकी नीरव उदासीनता हर बात के ऊपर थी। उसने किसीसे कोई प्रश्न नहीं किया, किसीके किसी प्रश्न का उत्तर भी नहीं दिया। जो संगिनी थीं, उनमें किसीको भी वह पहचानती नहीं थी। उनके विराग-अनुराग दोनों के प्रति वह समदर्शी थी। एक दिन एक नई लड़की भर्ती हुई। गोद में दो-तीन महीने का बच्चा था। बच्चे को सुलाकर मां शायद नहाने या खाने चली गई थी। लौटकर देखा कि बच्चे को गोद में लेकर उसके मुंह की पैनी नजर से देख रही है वह 'पगली'।

सर्वनाश! उस लड़की की चीख सुनकर सभी दौड़े आए। बच्चे को जब उसकी गोद से खींच लिया, तो मल्लिका अपलक नेत्रों से सिर्फ देखती रह गई, फिर चुपचाप उठकर अपने उस छोटे सेल में जा घुसी।

मां ने जेलर साहब से शिकायत की। अधिकारी लोग चिन्तित हो गए। मल्लिका के लिए स्पेशल गार्ड नियुक्त किया गया। उसका सेल सुबह से शाम तक बंद रहने लगा। इतने पर भी निश्चिन्त न हुए, तो अधिकारियों ने अन्त में उसे हमारी जेल में भेजने की व्यवस्था की। यहां जनाने वार्ड में बच्चे नहीं हैं।

कुछ ही दिनों के भीतर वह आ गई। घोड़ा-गाड़ी का दरवाजा खोलकर जब उसे उतारा गया तो एक बार गौर से देखा कि चारों तरफ जो लोग थे, सब मानो पत्थर हो गए हैं। पता चला कि हमारी कल्पना कितनी दीन, कितनी भीरु है। असली वस्तु के निकट जाने में भी डरती है। और पता चला कि विधाता के हाथ की अनिर्वचनीय सृष्टि का जो रूप है, उसे आदमी के हाथ की अनादर-अवहेलना किस दुर्गति में नहीं ले जा सकती!

मेरे जन्मस्थान में जो मकान है, उसकी बैठक के सामने एक अनार का पेड़ था। फागुन में उसके सर्वांग पर सुन्दर चमकीले फूलों का मेला

ाता था। वैशाख में रसभरे फलों का भार डाली-पत्तों को झुका
या। एक बार न जाने कहां से एक झुंड हड्डों (कीड़ा विशेष) ने
र उसकी डालियों पर अड्डा जमा लिया। हमारे एक बड़े ही अनुभवी
भभावक ने उन हड्डों को उड़ाने के लिए एक दिन उस फल-फूल से
ं अनार-वृक्ष में आग लगा दी। उस वक्त मैं बच्चा था। आज भी
द है, स्कूल से लौटकर उस पेड़ की जली डालों की ओर देखकर
ोया था। जन्मस्थान छोड़कर आने के बाद भी जब-तब उसकी बात
याद आ जाती थी। फिर भूल गया था। आज इतने दिन बाद मल्लिका
गांगुली की ओर नजर जाते ही वह दग्धपल्लव नष्टश्री वृक्ष मेरी आंखों
के आगे तैरने लगा।

हमारी फीमेल वार्डर मानदा विश्वास मल्लिका का हाथ पकड़कर
उसे धीरे-धीरे मेरे दफ्तर में ले आई।

एक कुर्सी की तरफ इशारा करते हुए बोला, "बैठिए।" वह नहीं
बैठी। बड़ी-बड़ी नीली आंखें उठाकर मेरे चेहरे की तरह सिर्फ एक बार
देखा। आश्चर्य हुआ। यह उन्माद की उद्भ्रांत दृष्टि तो नहीं है।
शांत-संयत आंखें हैं, जिनके अन्तराल में जाने कितने दिनों का पत्थर से
दबा क्रंदन छिपा हुआ है। यदि वह पत्थर सरक जाए, तो अवरुद्ध अश्रु-
धारा निकल आएगी। सम्भव है, सारी दुनिया डूब जाए।

वारण्ट में जो सूची है, उससे मिलान करने के लिए मानदा
उसके चीज-वस्त्रों-गहनों आदि के नाम बोलती जा रही थी। मैंने रोक
कर कहा, "यह सब रहने दो, तुम इसे भीतर ले जाओ।"

अगले सप्ताह 'नून ड्यूटी' का भार मेरे ऊपर पड़ा। यहां यह ब
देना जरूरी है कि 'नून ड्यूटी' पूरी ड्यूटी नहीं, मध्याह्न-आराम
उसका स्थान घर न होकर दफ्तर है। बस, यही थोड़ा-सा अन्तर
मगर दफ्तर होते हुए भी गृह-सुलभ सुख-सुविधाओं में कमी नहीं रह
'लायात सेक्शन' की लंबी मेज का तख्त में रूपान्तर हो जाएगा।
ऊपर तकिया और दरी के सहयोग से सुन्दर बिस्तर तैयार हो जा
गर्मियों के दिनों में सिर पर घूमता हुआ पंखा। जाड़ों में सीधा
से निकाला कम्बल। खाली दफ्तर। चारों तरफ खामोशी। निर्व

का मनोरम परिवेश। कभी-कभार किसी-किसी दिन दो-एक बार टेलीफोन की झंकार या कोर्ट पुलिस की हुंकार—'असामी आया है, हुजूर!'

इन सब उत्पातों के होते हुए भी हमारे दादा लोग इस 'नून ड्यूटी' नामक वस्तु को एक तरह से पसन्द करते थे; कारण, तीन कमरों और तीन गुने बाल-बच्चों वाला वह सरकारी क्वार्टर दिवा-निद्रा के लिए प्रशस्त स्थान नहीं। दूसरी बात, पति की द्विप्राहरिक निद्रा कोई भी स्त्री प्रसन्न दृष्टि से नहीं देखती। वे सोचती हैं कि उनपर गृहिणी जाति का एकच्छत्र अधिकार है। दोपहर के वक्त थोड़ी 'कमर सीधी करने' की जरूरत यदि किसीको है, तो उन्हींको है, जो सुबह से शाम तक संसार-चक्र में चक्कर खा रही हैं। दफ्तर नामक अड्डे पर जो लोग काम के नाम पर ऊंघते हैं, अथवा गप्पों का मजमा जमाते हैं, वे लोग घर आकर भी खर्राटे भरें, यह अन्याय कौन सहेगा?

मैं तब तक 'दादा' स्तर तक नहीं पहुंच पाया था। शून्य शैया का अभ्यस्त होने में कुछ देर थी। नून ड्यूटी-सप्ताह उत्पीड़न-सा लगता था। यही कारण था कि उस दिन भी दरीवाले बिस्तर पर अप्रसन्न मन से करवटें बदल रहा था। जेल-गेट के भीतर की तरफ फाटक पर शोर सुनाई दिया। पुरुषों की आवाज के साथ जनानी आवाजें भी मिली हुई थीं। जाकर देखता हूं कि खण्ड-प्रलय की सूचना है। एक तरफ घनी मूछों वाला गेटकीपर है, दूसरी तरफ आंखें लाल किए फीमेल वार्डर। क्या बात है?

गेटकीपर ने उत्तर नहीं दिया, मानदा विश्वास के पेट की तरफ अंगुली से इशारा किया। चादर के सयत्न-आवरण के नीचे वह विपुल स्फीति अंधे आदमी की नजरों में आए बिना भी नहीं रह सकती थी। मैं विस्मित हुआ। मानदा चिरकुमारी है। इसलिए यदि गेट कीपर इस घटना का कोई अनैसर्गिक कारण संदेह कर फीमेल वार्डर को चुनौती देता हो, तो उसे दोष नहीं दिया जा सकता।

मानदा भी रुकने वाली नहीं। नारी जाति के चिरन्तन प्रिविलेज पर खड़ी होकर उसने भी गेटकीपर को चुनौती दे दी है। नारी-देह की 'तलाशी' लेने का पुरुष को क्या अधिकार? अतएव दूर रहो।

मैं बड़ी दुविधा में पड़ गया। अंत में गेटकीपर का थोड़ा तिरस्कार कर मैंने मानदा से अनुरोध किया कि यदि सम्भव हो तो वह मेरे दफ्तर में जाकर अपना देहभार मुक्त करे। इस वक्त वहां कोई पुरुष नहीं। वह राजी हो गई। कुछ देर बाद मैंने दफ्तर में लौटकर देखा कि मेरी मेज पर एक जोड़ा साड़ी, पास में पेटीकोट-ब्लाउज, एक शीशी सुगंधित तेल, स्नो, पाउडर और बाल बांधने की चीजें—ये सब सजी रखी हैं।

जिज्ञासु आंखों से देखते ही मानदा ने अपने स्वाभाविक रूखे स्वर से कहा, "ये सब आप लोग तो देंगे नहीं। तभी ललाट का लिखा मुझे ही भोगना पड़ता है। इनमें से किसी चीज के बिना औरतों का काम चलता है, बताइए?"

औरत फीमेल वार्ड में कोई नई नहीं आई, मगर अब तक तो यह दुर्भोग मानदा को भोगना नहीं पड़ा। आज जिस कारण भोगना पड़ा, वह भी समझ गया। फिर भी प्रश्न किया, "मगर औरतें तो तुम्हारे यहां सिर्फ पन्द्रह हैं। और···"

"हे मेरे राम!" वह जोर से हंसकर बोली, "ये सब क्या उन अभागिनों के लिए है? वे स्नो-पाउडर मलेंगी?"

फिर एकाएक गम्भीर होकर बोली, "अच्छा सर, जिस हाकिम ने मल्लिका को जेल भेजा है, आप एक बार मुझे उसके पास ले जा सकते हैं?"

"क्यों?"

"उससे एक बार कह आती कि पागलखाने में वह नहीं जाएगी, तुम जाओगे। और कहती कि उसके घरवालों को पकड़वाकर एक-एक कर फांसी दे दो। यह लड़की अभी बची हुई है, सिर्फ यीशु की कृपा से।" कहकर मानदा ने छाती पर क्रॉस-चिह्न बनाकर दोनों हाथ सिर से जा लगाए।

मैंने कहा, "तुमने उसकी सारी बातें सुनी हैं?"

"कैसे सुनूं? वह तो बात करती नहीं। मगर उसके चेहरे की तरफ देखकर ही मैं सब समझ गई हूं। मुझे और कुछ दिन दीजिए, उसे थोड़ा स्वस्थ कर लूं। फिर सब जान सकूंगी। यदि कर सकें सर, तो डॉक्टर

साहब से कहकर उसके लिए थोड़े दूध-वूध की व्यवस्था कर दीजिए। जेल का खाना वह बिलकुल नहीं खाती।"

मैंने कहा, "करूंगा। और ये चीज-वस्त्र सब यहीं रहने दो। मैं तुम्हारे पास भिजवा दूंगा।"

दस-बारह दिन बाद किसी काम से जनाने वार्ड में जाना पड़ गया। मानदा बोली, "मल्लिका को नहीं देखेंगे?"

"चलो।"

बैरक के उस तरफ सेल-ब्लॉक है। उसके सामने घास से ढका चबूतरा है। बीच में एक घनी डाली-पत्तियों वाला आम का पेड़ है। नीचे का कुछ भाग पक्का किया हुआ है। उस वेदी के ऊपर ही मल्लिका बैठी हुई थी। पैरों में विदा लेते सूर्य की कुछ क्षीण किरणें लोट रही हैं। उसकी गोद में कांपती छाया है। एक शान्त-करुण छवि।

यह जैसे कोई और मल्लिका है। देखकर पहचानी ही नहीं जाती। रूखे-जकड़े बाल बड़ी कोशिश से वश में आए हैं। दो सुन्दर लंबी वेणियां पीठ पर झूल रही हैं। पोशाक—एक लाल किनारी की साड़ी, साथ में लाल रंग का ब्लाउज। चेहरे पर सामान्य प्रसाधन के चिह्न। माथे पर सिन्दूर का टीका। काजल-लगी आंखों में अभी प्राप्त किए स्वास्थ्य का आभास है। शीर्ण कपोलों पर उस दिन जो मलिनता देखी थी, वह बहुत कुछ लुप्त हो गई है, और एक लावण्य-आभा फूट उठी है।

उसी दिन की तरह उसने चुपचाप एक बार आखें उठाकर देखा। वही शान्त दृष्टि। मानदा ने आगे बढ़कर उसकी ठोड़ी से हाथ लगाकर उसका मुंह मेरी तरफ कर कहा, "इस लड़की ने खून किया था, आप विश्वास करते हैं, सर?"

दो-तीन कैदी औरतें पास आकर खड़ी हो गई थीं। उनमें से एक से बोली, "जा तो तरला, दीदी के लिए दूध और फलों की तश्तरी ले आ।"

तरला दौड़ गई। मानदा मेरी ओर मुड़कर बोली, "दो-एक किताब-विताव दे सकते हैं ?"

"किताबें !"

"हां। बच्चों की चित्रों वाली किताबें। देख नहीं रहे, वह अब दूध पीती बच्ची से भी बढ़कर है। सब करना पड़ता है।"

"तुम्हें लगता है, किताब पढ़ सकेगी ?"

"शायद एकाध पन्ना उलट ले।"

वापस आते-आते बोला, "बातचीत कुछ करती है ?"

"बिलकुल नहीं।" मानदा ने सिर हिलाकर कहा, "उसकी खुद की बातें पूछकर देखा है। उससे उसका सिर्फ कष्ट बढ़ता है। ठीक हो जाए फिर धीरे-धीरे सब पता चल जाएगा।"

पता चल गया कुछेक दिन बाद ही। सुबह का दफ्तर है। सांस लेने का वक्त नहीं। बड़े साहब ने 'सलाम' भेजा। जाकर देखता हूं, उनकी मेज के पास एक अपरिचित खूबसूरत युवक बैठा है। उसकी ओर इशारा कर साहब बोले, "यह कलकत्ता से आए हैं। मल्लिका गांगुली से मिलना चाहते हैं। यह क्या वही लड़की है, जिसे उस दिन देखा था ?"

मैं बोला, "हां, सर !"

"तब तो इण्टरव्यू-रूम में सुविधा नहीं होगी। तुम अपने दफ्तर में बिठाकर बात करा दो।"

"ठीक है।"

युवक के हाथ से उसकी दरख्वास्त लेकर उसका नाम देख लिया—सतीश गांगुली। उसने मेरे साथ आते-आते उद्विग्न प्रश्न किया, "अब कैसी है, सर ?"

मैं बोला, "पहले से बहुत अच्छी हैं। आपकी क्या लगती हैं ?"

"मेरी पत्नी है।"

मल्लिका को ले आने के लिए मानदा के पास खबर भेजी। कुछ

देर बाद वह आई, मगर अकेली। मैं बोला, "क्यों ?"

"वह नहीं आई, बाबूजी !"

"क्यों ?"

"यह मैं कैसे कहूं ?" मानदा ने अप्रसन्न स्वर में कहा।

"उसके पति मिलने आए हैं, कहा था ?"

"कहा क्यों नहीं ! एकदम लकड़ी होकर बैठी रही। किसी तरह भी नहीं ला पाई।" कहकर उसने कड़ी नजर से भद्र पुरुष की ओर देखा।

उसे देखकर ऐसा लगा कि मल्लिका आना नहीं चाहती। इस बात से उसे खुशी ही हुई है। ये ही मल्लिका के पति हैं, यह समझने में किसी असुविधा की बात नहीं हो सकती। मगर उसकी सारी दुर्दशा के लिए मन ही मन इन्हें उत्तरदायी समझने का क्या कारण था, मानदा ही बता सकती है। उसकी गुस्से से चढ़ी आंखों के सामने मतीश भी थोड़ा परेशान-सा नजर आया। मैंने मानदा की ओर मुड़कर कहा, "अच्छा, तुम अब जाओ।"

उसके चले जाने के बाद मतीश कुछ इस तरह बोला, जैसे वह अपने से ही बात कर रहा हो, "फिर तो लगता है, वह उसी तरह है।"

मैं बोला, "क्या वहां भी मिलने नहीं आती थी ?"

"शुरू-शुरू में आती थी। तब बड़ी 'वॉइस्टरस' थी। चीखती, रोती-हंसती, जाने क्या-क्या बकती थी; मगर मिलने में आपत्ति नहीं करती थी।"

"आप बराबर कलकत्ता में ही रहे हैं ?"

"जी नहीं, मैं इलाहाबाद रहता हूं। वहां से हर महीने आकर देखता रहा हूं। बीच-बीच में थोड़ा पहचान भी लेती थी। बाद में एकाएक बिलकुल गुम हो गई। बात नहीं करती, बुलाओ तो आती नहीं।"

थोड़ा रुककर बोला, "इस बार बहुत दिन तक नहीं आ पाया। कल वहां पहुंचा तो सुना कि यहां भेज दी गई है। घर न जाकर सीधे स्टेशन पहुंचकर गाड़ी पकड़ी। न जाने क्यों ऐसा लगा कि इस बार मुलाकात होगी। भले ही बात न करे, आंखों से तो एक बार देखेगी।"

कहते-कहते गला भर आया। रूमाल निकालकर आंखों को दबा

लिया। व्यर्थ सान्त्वना देने की चेष्टा न कर मैंने हाथ के काम में मन लगाया। कुछ मिनट बाद फिर उसकी बात सुनाई पड़ी, "तो चलता हूं, सर!"

मैं बोला, "आप ठहरे कहां हैं?"

"कहीं नहीं। स्टेशन से सीधा चला आया।"

"अभी कहां जाना चाहते हैं? आपको वापसी गाड़ी तो वही रात दस बजे मिलेगी।"

"जाऊंगा और कहां? सोचता हूं, कुछ घंटे वेटिंगरूम में ही काट दूं।"

"यहां आपकी जान-पहचान का कोई नहीं?"

"जी नहीं।" कहकर वह उठ पड़ा।

मैं भी खड़ा होकर बोला, "चलिए, आपको थोड़ी दूर छोड़ आऊं।"

"इसकी जरूरत नहीं। सिर्फ गेट पार करा दीजिए।"

गेट पार करके भी मैं उसके पीछे चल रहा हूं, यह देखकर वह एकाएक पीछे मुड़कर खड़ा हो गया और नमस्कार कर बोला, "अब मैं चला जाऊंगा, सर! आप और कष्ट न कीजिए।"

"चलिए न!"

एक छोटे इकतला मकान के सामने आकर बरामदे की सीढ़ियों की ओर इशारा कर मैंने कहा, "इधर ही..."

मतीश कुछ अवाक् होकर बोला, "यह..."

"हां, यही मेरा घर है। पैतृक नहीं, सरकारी। फिर भी आपके वेटिंगरूम की तुलना में एकदम खराब नहीं रहेगा।"

वह थोड़ी आनाकानी करते हुए बोला, "किंतु..."

"मुझे असुविधा होगी, यही कहना चाहते हैं न!"

"तो और क्या कहूंगा?"

तुरंत बिना किसी औपचारिकता के दोपहर का भोजन कर दोनों बाहर बरामदे में कैम्प-कुर्सियों पर आ बैठे। सामने थोड़ी ही दूर पर जेल की खासी ऊंची दीवार थी। उधर कुछ देर देखते रहने के बाद मतीश धीरे-धीरे बोला, "उन लोगों का वार्ड किस तरफ है, सर?"

"बस यही, इस परकोटे के दूसरी तरफ।"

"देखिए, कैसा आश्चर्य है! इतने निकट, यानी कुछेक गज दूर बैठा हूं, फिर भी मुलाकात नहीं हुई।"

मैं निरुत्तर रहा। सतीश ने जैसेकि अपने मन में ही मृदुकंठ से कहा, "और कुछ ही महीने पहले तक ऐसी हालत थी कि मुझे बिना देखे छटपटाती थी।"

इसी वक्त मेरे कनिष्ठ सुपुत्र ने आकर सूचित किया, "मां कह रही हैं, बाहर वाले कमरे में चाचाजी का बिस्तर बिछा दिया है।"

सतीश की तरफ मुड़कर बोला, "मतलब समझे? इन्जंक्शन जारी हो गया है—और बैठना नहीं चलेगा, अब सीधे जाकर पसर जाओ। जो आदेश आया है, उसपर अपील नहीं चलती।"

सतीश ने मृदुभाव से हंसकर कहा, "तो ठीक है। और आप?"

"मैं भी उठता हूं। वह मेरे ऊपर भी—कानून की भाषा में—लागू होता है।"

जेल के पास ही एक घुड़दौड़ का मैदान है, एक मील चौड़ा। उसीके बीच एक हरे कोमल गोल्फ-कोर्ट पर जाकर बैठ गए। सूर्य अस्त हो गया था। वैशाख मास था। शुक्ल पक्ष था। थोड़ी ही देर में सामने उस सुपारी, नारियल और बांस के जंगल से घिरे गांव को छूता चन्द्रमा निकलेगा। उसी परम आविर्भाव का पूर्वाभास पेड़ों के सिरों पर मिल रहा है। उसी तरफ देखता सतीश बहुत देर चुप बैठा रहा। फिर कुछ समय बाद बोल उठा, "ठेठ कलकत्ता के लोग हैं हम लोग। इतना सब खुला-खुला हम लोगों के अनुकूल नहीं पड़ता।"

"इन इलाकों में कभी नहीं आए?"

"कोई दो साल पहले आया था। इस नारियल-सुपारी की घनी पंक्ति की ओर देखकर उसी दिन की बात सोच रहा था।"

"घूमने आए थे?"

"हां, शुरू में एक तरह से घूमने ही।"

"अंत में ?"

"अंत में जो हुआ, आज उसीका फल भोग रहा हूं। शायद जीवन-भर भोगकर भी छुट्टी न मिले।"

"सो तो देख ही रहा हूं। मगर सोच नहीं पा रहा कि यह सब क्यों, कैसे हुआ ?"

"उस विचित्र कहानी को सुनेंगे तो आप धैर्य नहीं रख सकेंगे दादा !"

"एक बार परीक्षा लेकर देखने में आपत्ति है कुछ ?"

"आपत्ति !" मतीश मृदुभाव से हंसा, "इन कुछ घंटों में आपका जो परिचय मिला है, उसके आगे यह चीज और खड़ी नहीं रह सकती। मगर वह एकरस दुःख की कहानी है......"

बाधा देकर बोला, "दुःख कोई नगण्य चीज नहीं, मतीश बाबू ! यदि किसी मनपसंद व्यक्ति को उसमें हिस्सा दे सकें, तो उसे भी संपदा बनाया जा सकता है। इस बात में दार्शनिक गंध होते हुए भी सत्यता है।"

मतीश की मृदु हंसी लुप्त हो गई। वह कुछ देर चुपचाप जमीन की ओर देखते रहने के बाद निर्लिप्त शुष्क स्वर में बोला, "अच्छा, तो सुनिए।"

२

■ कालेज के दोस्तों में जिसके साथ सबसे ज्यादा मित्रता थी, कालेज छोड़ने के बाद भी उससे दरार नहीं पड़ी, उसका नाम था हीरालाल। उसका घर बंगाल देश में कहीं था। मुझे ठीक पता न था। वह एक दिन एकाएक मेरे अध्ययन-कक्ष में आकर बोला, 'मेरी शादी है। तुम्हें मेरे गांव चलना पड़ेगा।'

" मैं बोला, 'सर्वनाश।'

" 'सर्वनाश क्यों ?'

" 'अरे हम लोग ठहरे पक्के कलकत्ता के लोग। सियालदह स्टेशन पर गाड़ी चढ़ना हमारे शास्त्र में वर्जित है।'

" हीरालाल सुनना नहीं चाहता। उसे समझाकर कहा, 'कलकत्ता से बाहर भी बंगला देश है, मगर हम लोगों के लिए उसका अस्तित्व सिर्फ भूगोल के पन्नों में है। मेरी मां-बहन, बुआ-मौसी किसीने भूगोल नहीं पढ़ा। पढ़ा होगा, तो भूल गई हैं।'

" हीरालाल पूरा घेंटू था। 'गांव का गंवार'। उसने सीधे मेरे पिताजी के पास जाकर आवेदन प्रस्तुत किया, और एक तरह से जबरदस्ती उसे मंजूर करा लाया। मां नाराज हुईं। विधवा बहन मंजरी भी गुस्से में लाल थी। विदाई के दिन बिस्तर आदि तैयार कर सूटकेस लगाकर गंभीर होकर बोली, 'दादा, देखना, दोस्त के देश की कोई विद्यावती सिर पर सवार न हो जाए।'

" मैं हंसकर बोला, 'तो हर्ज क्या है ? उस इलाके की लड़कियां वाकई सुन्दर हैं, जिन्हें कहते हैं छरहरी ! तेरे जैसी फफ्फस नहीं।'

" 'मुंह में आग !' कहकर बहन ने ऐसा मुंह बनाया जो इसी बात की सहायता से संभव है।

" अपने वंश में मैं ही पहली बार सियालदह स्टेशन पर गाड़ी में बैठा। यशोहर पहुंचकर जब मैंने अपना सामान खोला, तो देखा कि मेरी बहन ने इन कुछेक दिनों के लिए आवश्यक-अनावश्यक कोई भी चीज नहीं छोड़ी। मुख-शुद्धि का मसाला, दांत कुरेदने के नीम के तिनके, शरीर पर मलने का सरसों का तेल तक साथ में रख दिया है। हीरालाल की भाभी ने गंभीर होकर कहा, 'मगर दो चीज लाना भूल गए लालाजी !'

" मैं बोला, 'क्या ?'

" 'थोड़े-से चावल और थोड़ा-सा नमक।'

" गंभीरता बनाए रखकर मैंने कहा, 'चिन्ता न कीजिए। क्या पता वह पार्सल से आ पहुंचे !'

" सभी एकसाथ हंस पड़े।

" यशोहर से कोई पंद्रह मील दूर एक गांव में लड़की वालों का घर था। जल्दी-जल्दी खाना-पीना कर दो बड़ी नावों में वर और बराती चल पड़े।

" नाव में भी मैं पहली बार बैठा था। बरसात का समय था। नावें धान-खेतों के बीच होकर, पटसन के खेतों के पास से, घास-पत्तों को ढकेलती, ताल-तलैयों-मैदानों को पार कर चलने लगीं। दोनों ओर आम, कटहल, सुपारी, नारियल के जंगल थे। बांस की झाड़ियां पानी पर झुकी हुई थीं। शाम के वक्त उन लोगों के घाट पर जाकर पहुंचे। वहां से एक मील पैदल रास्ता। वहां कन्या-पक्ष के लोग सिर्फ तीन-चार गैस लालटेन लिए प्रतीक्षा कर रहे थे।

" बरातियों में कानाफूसी होने लगी कि दूल्हे के लिए पालकी नहीं आई, कैसी व्यवस्था है ? हीरालाल के पिता सबको चुप कर धीमे गले से बोले, 'यह तुम लोगों की बड़ी ज्यादती है। पालकी आएगी कहां से, यह नहीं समझते ? लड़की की मां नहीं, बाप नहीं। गरीब बहनोई पंडित

आदमी है। किसी तरह राम-राम कहकर साली के हाथ पीले कर रहा है।'

" थोड़ा रुककर फिर बोले, 'और फिर गाड़ी-पालकी देखकर तो शादी कर नहीं रहा। सिर्फ लड़की देखी है। साक्षात् लक्ष्मी जैसी है। सही-सलामत काम हो जाए। घर की बहू घर ले पहुंचें। गाड़ी-पालकी वहां पहुंचकर जितना चाहो चढ़ लो। क्या कहते हो बेटे, थोड़ी-सी दूर पैदल चलने में बहुत कष्ट होगा तुम्हें ?' कहकर उस बूढ़े आदमी ने मेरी पीठ पर अपना हाथ रखा।

" मैं छूटते ही बोला, 'नहीं, नहीं। मुझे बड़ा अच्छा लग रहा है चाचाजी !'

" चारों तरफ जंगल से घिरे दो-तीन कच्चे कमरे हैं। उन्हींमें से एक में वर और बरातियों के ठहरने की व्यवस्था की गई है। बड़े ढंग से गोबर से लीपा गया मिट्टी का फर्श है। उसपर दरी बिछी है। वर के लिए एक विशेष आसन तैयार किया गया है, साथ ही झालरवाला तकिया है। आसन पर एक सुन्दर हिरन कढ़ा है, तकिये पर आकर्षक गुलाब। सुरुचि और बारीक कला का परिचय मिलता है। मुग्ध होकर देखने लगा। कन्यापक्ष के एक सज्जन ने सदय कर कहा, 'ये सब लड़की के हाथ का काम है।'

" मैं बोला, 'बड़ा सुन्दर है।'

" हीरालाल के चेहरे पर खुशी और गर्व की एक झलक दिखाई दी।

" लग्न नौ बजे थी। विवाह-मंडप में वर की पुकार पड़ी, मगर उसे थोड़ा बाहर जाना था। घर के निकट ही एक पुराना तालाब था। पैदल जाने का संकरा रास्ता था। दोनों तरफ जंगल। लालटेन लेकर एक आदमी रास्ता दिखाता आगे-आगे चलने लगा। बोला कि और जाने की जरूरत नहीं, यहीं बैठ लीजिए। हीरालाल कलकत्ता का आदमी है, इस वक्त दूल्हा है। बोला, 'तुम यहीं रहो।' कहकर वह तालाब की तरफ थोड़ा और बढ़ गया। एक मिनट बाद ही एक चीख, 'साप !'

" उस आदमी ने दौड़कर जाकर देखा कि पैर की एक उंगली

खून निकल रहा है।

" लाठी-सोटा, मशाल लेकर लोग दौड़े आए। थोड़ी देर खोज-खबर लेने के बाद ही एक आदमी की नजर पूंछ की तरफ गई। साक्षात् यम था। उस इलाके में उसे कहते हैं—खैये गोखुरा। छू ले तो और रक्षा नहीं।

" हीरालाल को पहले ही वे लोग धर-पकड़कर कमरे में ले आए थे। ओझा ने आकर झाड़-फूंक शुरू कर दी। हाथ में बैग लिए एक डॉक्टर भी आए, मगर हीरालाल ने और आंखें नहीं खोलीं, बात भी नहीं की। घण्टे-भर बाद उसका ऐसा साफ-गोरा रंग नीला हो गया। मुंह से झाग निकलने लगा। और थोड़ी देर बाद उस इलाके का सबसे बड़ा ओझा आया। उसने हलके से उसके बालों को खींचा। बालों का एक पूरा गुच्छा उसकी मुट्ठी में आ गया। ओझा का चेहरा काला पड़ गया। वह धीरे-धीरे बोला, 'और आशा नहीं।'

" भीतर-बाहर रोना-धोना शुरू हो गया। लड़की के बहनोई 'हाय-हाय' कर चक्कर काट रहे हैं, और वर के पिता निश्चल पत्थर बने बैठे हैं। बीच में एक बार जाने किससे बोले, 'देखो तो, घाट तक के लिए कोई पालकी मिल सकती है या नहीं। रुपये जो मांगे, दूंगा। तुम लोगों को बड़ा शौक था…'

" इसी वक्त जाने किसने आकर कहा कि लड़की बेहोश हो गई है। सुनकर किसीने कोई बेचैनी प्रकट नहीं की। जो जैसे था, मृत शरीर के आसपास बैठा रहा।

" मैं कमरे के एक कोने में था। एक किशोरी आकर बोली, 'आप एक बार अंदर आइए।'

रंगोली है। हाथों और गले में एक-दो साधारण अलंकार हैं। एक नई चटाई पर आंखें बंद किए जो लेटी हुई है ; लगा, जैसे वह लड़की नहीं, किसी सुदक्ष शिल्पी के हाथ की गढ़ी प्रतिमा है।

" औरतों का एक झुंड उसके चारों ओर भीड़कर बातें कर रहा था। मुझे देखकर सब इधर-उधर हो गईं।

" आधा-सा घूंघट किए एक महिला आगे आकर भरे गले से बोली, 'देखिए तो, लगता है, इसका भी काम हो गया। न आंख खोलती है, न जवाब देती है।'

" मैंने अन्दाजा लगाया कि यही लड़की की दीदी हैं। मैं अपनी चादर उतारकर आगे बढ़ा। बोला, 'एक बाल्टी में जल लाइए। और जंगले के पास से आप सब हट जाइए। हवा आने दीजिए।'

" क्षण भर में कमरा खाली हो गया। बहुत देर आंखों पर जल के छींटे मारे, तब कहीं पलकें एक-दो बार हिलीं। फिर धीरे-धीरे आंखें खुल गईं। दो सुन्दर नीले तारे निकल आए। काव्य में पढ़ा है, 'नीलोत्पल'। आज वह चीज आंखों से देखी।'

" पहले तो वह शायद कुछ भी नहीं समझी। हठात् मुझे देखकर वह चौंक गई। हड़बड़ाती हुई उठी और अपनी साड़ी एड़ी तक खींचकर बैठ गई। गिरा हुआ आंचल वक्ष पर रखा। मैंने जल्दी से उसे कंधे से पकड़कर लिटाते हुए कहा, 'नहीं, उठिए नहीं, लेटी रहिए।' उसकी दीदी की ओर देखकर बोला, 'थोड़ा-सा दूध ले आइए, गरम दूध।'

" लड़की ने करवट लेकर फिर आंखें बंद कर लीं। लालटेन के धीमे प्रकाश में देखा कि आंखों की कोरों से पानी की बूंदें टपक रही हैं।

" आंगन में एक तरफ एक छोटी-मोटी सभा हो रही है। सभी गांव के प्रमुख लोग हैं। सभी बड़ी उम्रवाले हैं। उधर से जब मैं कमरे को वापस जा रहा था, तो एक ने पूछा, 'होश आ गया बेटे ?'

" सिर हिलाकर उत्तर दिया, 'जी हां।'

" 'न आता, वही अच्छा था।' कहकर भद्र पुरुष ने एक लंबी सांस छोड़ी। एक अन्य सज्जन बोले, ' जो गया, वह तो गया। अब जो व है, उसकी तो कोई व्यवस्था हो। तुम खड़े क्यों हो, बेटे ! बैठ

अरे, कौन है ? कोई स्टूल-फिस्टूल ले आओ।'

" मैं उस दरी पर ही एक तरफ बैठते हुए बोला, 'नहीं; नहीं। स्टूल की जरूरत नहीं। मैं यहीं बैठता हूं।'

" 'अरे ! धूल में बैठ गए ? खड़े होओ, थोड़ा झाड़ दूं। कलकत्ता के लड़के हो। आज हमारे इस गांवड़े में आए हो। ऊपर से यह सर्वनाश और हो गया। तुम्हें बड़ा कष्ट हुआ, बेटे ...'

" वह भद्र पुरुष अपने कंधे का अंगोछा लेकर धूल झाड़ने लगे। इधर एक सज्जन तम्बाकू पी रहे थे। हुक्का दूसरे को पकड़ाकर उसी प्रस्ताव को आगे बढ़ाते हुए बोले, 'व्यवस्था और क्या ? विवाह तो रात के भीतर-भीतर करना ही पड़ेगा। नहीं तो यादव बाबू समाज में पतित हो जाएंगे। फिर लड़की को भी जीवनभर कुंआरी रहना पड़ेगा।'

" यादव बाबू लड़की के बहनोई हैं। हाथ जोड़कर बोले, 'आप पांच लोग उपस्थित हैं; जैसे भी हो, इस गरीब का उद्धार कीजिए। इस वक्त अच्छा-बुरा सोचने का समय नहीं।'

" पहले वाले भद्र पुरुष बोले, 'हूं ! बड़ा मुश्किल काम है। लड़के-छोकरे सब विदेश में हैं। आस-पास कोई भी तो नहीं दिखता। एक विपिन चटर्जी महाशय हैं। उम्र तो कुछ अधिक है, पत्नियां भी तीन हैं। मगर कुलीन व्यक्ति के लिए यह कोई ज्यादा नहीं। और फिर माली हालत अच्छी है। वे राजी हों तो लड़की को और जो हो, खाने-पहनने का कष्ट नहीं होगा।'

" यादव बोले, 'वे राजी हो जाएंगे क्या ?'

" 'हां, हो जाएंगे,' एक दन्तहीन भद्र पुरुष ने कहा,'तुम्हारी साली तो बेपरों वाली परी है। हां, नकद कुछ जरूर देना पड़ेगा।'

" 'हां, अवश्य; मगर मेरी हालत तो जानते ही हैं। आप लोग दया कर थोड़ा कह-सुनकर देखिए। मैं भी जाकर हाथ-पैर पकड़ता हूं। जो भी कृपा करें !'

" 'हम लोगों की जितनी भी सामर्थ्य है, अवश्य ही मदद करेंगे,' पहले वाले वही सज्जन बोले, 'लड़की नहीं, बहन नहीं, साली है। फिर भी, तुमने जितना किया है भाई, उतना आजकल कितने लोग करते हैं ?'

" 'यह बात सौ बार भी कहूँ तो कम । आजकल ऐसा देखने को नहीं मिलता,' उन बुजुर्गों में से किसी और ने कहा, 'यह बात तो हम लोग कहते ही रहते हैं।'

" 'तो फिर और देर नहीं। चलो, सब मिलकर चटर्जी को पकड़ें। रात और ज्यादा नहीं बची।' "

यहां आकर मतीश का मृदु स्वर धीरे-धीरे लुप्त हो गया। कुछ मिनट का विराम रहा। मैंने उसके झुके हुए चेहरे की ओर देखा। लगा, जैसे वह कुछ कहना चाहता है, कह नहीं पा रहा। शायद कहीं रुकावट है। और थोड़ी देर इंतजार कर मैं बोला, "मेरे आगे आपको किसी संकोच की जरूरत नहीं, मतीश बाबू ! फिर भी यदि कोई बाधा है तो रहने दीजिए; मत बताइए। चलिए, वापस चला जाए।"

"बाधा !" मतीश म्लान हंसी हंसते हुए बोला, "बाधा आपने और रहने कहां दी ? नहीं दादा, इसलिए नहीं रुका। वह रात मेरी आखों के आगे आ गई है। बरसात की रात होते हुए भी वह इसी तरह निर्मेघ-निर्मल थी। उस दिन लगा था कि उसके भीतर एक विशेष संकेत है। यह आकाश ही मानो मेरे भाग्याकाश का सिम्बल या प्रतीक है। मगर ···छोड़िए।"

रुद्ध स्मृति का द्वार ठेलकर उस दिन के न जाने कितने दृश्य उसके मन के भीतर आ रहे होंगे। उसने मानो इस 'छोड़िए' शब्द से उन्हें बल-पूर्वक एक तरफ कर दिया। उसके बाद का अध्याय शुरु हो गया :

" गांव के मुखियों ने जैसे ही उठने की शुरुआत की, मेरे अन्तस में एक हलचल मच गई। घरवाले याद आ गए। पिताजी का कठोर चेहरा, मा की आखों में आंसू, छोटी बहन का विषमिला श्लेष, और इससे भी ज्यादा भयंकर हम लोगों का हातिबागान, बागबाजार और कालीघाट की रुद्र मूर्ति। हर चीज आंखों के आगे नाचने लगी, मगर इन सबको पीछे छोड़कर दो भीरु-असहाय आखों के नीले तारे सामने आ गए। मुझे लगा, जैसे यह अपूर्व सम्पदा मेरे लिए ही प्रतीक्षा कर रही थी। यदि ऐसा न होता, तो मैं इस अप्रत्याशित रूप से इस गाव मे आता क्यों ? हीरालाल इस तरह मरता क्यो, और इतने लोगों के होते हु

उसकी मूर्च्छित दुलहन की आंखों में जल के छींटे मारने के लिए मेरा ही बुलावा क्यों आता ?

" यादव बाबू कमरे में से एक चादर लेकर बाहर निकले ही थे कि मैं खड़ा होकर बोला, 'अनुमति दें तो एक बात कहूं ?'

" वह बड़े आग्रह के साथ बोले, 'कहिए !'

" 'आप लोग यदि मुझे अयोग्य न समझें और यदि आपकी साली को आपत्ति न हो, तो उन्हें···हम लोग कुलीन गंगोपाध्याय···'

" यादव बाबू मेरे दोनों हाथ कसकर पकड़कर झरझर आंसू बरसाते बोले, 'इतना सौभाग्य क्या मैं सह सकूंगा, भाई ?'

" चारों तरफ लोग गद्‌गद हो गए। एक सज्जन बोले, 'कलकत्ता का लड़का है न। प्राण हैं, दया-धर्म है।'

" एक और सज्जन कहने लगे, 'इसे भगवान ने भेजा है यादव ! यह नररूपी देवता है।'

" सभी इसी तरह की बातें करने लगे। बात हीरालाल के पिता के कानों में पहुंची। मुझे बुलवाया। अपराधी की तरह पास जाकर खड़ा हो गया। आगे बढ़कर उन्होंने एकाएक मुझे सीने से सटा लिया। बोले, 'हृदय से आशीर्वाद देता हूं बेटे, तुम लोग सुखी रहो। मेरी बेटी का किसी दिन भी अनादर नहीं करना।'

" इतनी देर बाद उनकी आंखों में आंसू दिखाई दिए।

" इधर मेरे मित्र का मृत शरीर पालकी में चढ़कर नदी के घाट पर चला गया। उधर मैं वर के आसन पर जाकर बैठ गया। एक ओर हर्ष-ध्वनि, दूसरी ओर उलूक ध्वनि। प्रत्येक मंत्र स्पष्ट रूप से श्रद्धापूर्वक उच्चारण कर मैंने मल्लिका को ग्रहण कर लिया।"

मतीश का मृदु स्वर हठात् फिर बंद हो गया।

मैं बोला, "उसके बाद ?"

" 'उसके बाद' का तो अन्त ही नहीं दादा ! यह तो सिर्फ शुरुआत है। मगर अब मुझे गाड़ी पकड़नी है।"

"गाड़ी पकड़ना कल एक बजे।"

मतीश चुप रहा। मैं बोला, "दोस्त के रूप में जब स्वीकार कर

लिया, तो भाई, जी थोड़ा हलका कर जाओ। अभी बहुत दिन जिन्दा रहना है।"

कहकर अपना दायां हाथ उसकी पीठ पर रख दिया। वह दोनों घुटनों में मुंह छिपाए बैठा था। मेरा स्पर्श पाकर उसने मुंह उठाया। ज्योत्स्ना में देखा कि उसकी आंखें छलक रही हैं।

धीरे-धीरे कर बार-बार विराम लेकर मतीश अपने स्वल्पजीवी विवाहित जीवन का सुदीर्घ इतिहास बता गया। सिर्फ दो साल का विवरण था, मगर उसका प्रत्येक दिन कभी आनन्द में उज्ज्वल, कभी वेदना में म्लान। प्रत्येक रात्रि कभी सुख से झिलमिल, कभी दुःख से जड़ित। चुपचाप सुनता रहा। इतिहास खत्म होते-होते चन्द्रमा अस्त हो गया। रात कितनी है, पता नहीं। अंधेरे मैदान में चार-पांच रोशनियां भाग-दौड़ कर रही हैं। मतीश बोला, "इतनी बत्तियां लिए ये कौन लोग घूम रहे हैं?"

मैंने कहा, "सिपाही लोग हमें खोजने निकले हैं। तुम्हारी भाभी ने हो सकता है, पुलिस को भी खबर कर दी हो। और बैठ रहना निरापद नहीं।"

३

मतीश के श्रोता ने उस दिन जिस मन से प्रायः सारी रात उसकी दीर्घ कहानी सुनी थी, उस मन की आशा मैं अपने श्रोताओं से नहीं करता। मेरी अक्ल इतनी खराब नहीं हुई। यही कारण है कि रोजमर्रा की कितनी ही 'तुच्छ' बातें, कितने ही छोटे-छोटे अश्रु-हास्य, जो उसके लिए हीरे से भी ज्यादा मूल्यवान थे मगर मेरे स्वयं के निकट साधारण हैं—वे सब अनुक्त रह गए। और जितना कुछ कहा है, वह भी उसकी तरह नहीं कहा जा सका। जो कुछ वर्ण-संभार रहा, वह मेरे गहन अन्तर में है। उसे बाहर लाने की दुर्लभ विद्या मेरे पास नहीं। जो दे पाया हूं, वह सिर्फ रेखाचित्र है, जिसे आप लोग कहते हैं स्केच !

सुबह की गाड़ी से मतीश वहू लेकर अपने आमहर्स्ट् स्ट्रीट वाले घर पहुंचा। दरवाजा खुला ही था। सीढ़ी चढ़ते ही मंजरी से मुलाकात हो गई।

"यह कौन है दादा ?"

"तेरी भाभी।"

"मतलब ?"

"भाभी का मतलब नहीं जानती, तुझे इतना मूर्ख नहीं समझता था।"

मल्लिका की ओर मुड़कर बोला, "मेरी छोटी वहन मंजरी है।"

कुण्ठित हंसी से भरे चेहरे को लेकर मल्लिका ननद की ओर एक

कदम बढ़ी, मगर वह एक अनिर्दिष्ट डालकर जल्दी से एक ओर हट गई। मतीश बहू के साथ सीढ़ियां चढ़ गया। मां के कमरे के आगे पहुंचकर आवाज दी, "मां!"

"कौन, मतीश आ गया?" कहते हुए वह सरपट बाहर निकल आई। रेशमी साड़ी पहने थीं। पूजा-आरती कर अभी-अभी उठी थी।

"तुम्हारी बहू ले आया मां!" रूखी हंसी हंसते हुए मतीश ने कहा।

मल्लिका झुककर पैर छूने लगी। देहली के उस तरफ से ही सुहासिनी रूखी आवाज में बोली, "रहने दे, बेटी!" कहकर वह थोड़ा-सा भीतर की तरफ हट गई। लड़के के मुंह की तरफ देखकर बोली, "बात क्या है मतीश?"

"बात तो देख ही रही हो। शादी कर ली है! और जो जानना चाहती हो, धीरे-धीरे बताऊंगा। पहले···"

वाक्य पूरा होने से पहले ही मां बगल से निकल गईं। कुछ मिनट बाद ही उसके पिता का क्रुद्ध स्वर कान में पड़ा, "ऐं? क्या कहती हो! शादी हो गई! बुलाओ तो इस नालायक को!"

बुलाना नहीं पड़ा। मतीश खुद ही पिता के कमरे में पहुंच गया। साथ ही साथ वह रूखी आवाज में गरज उठे, "यह सब क्या सुन रहा हू?"

"जो सुन रहे हैं, सच है।"

"हम लोगों की अनुमति लिए बिना ही शादी कर ली है? सूचना देने तक की जरूरत नहीं समझी?"

"सूचना भेजने का समय नहीं था। अनुमति लेने का भी उपाय नहीं था। सब सुनेंगे तो समझ जाएंगे।"

"अब मैं कुछ भी सुनना नहीं चाहता," विश्वनाथ बाबू भड़क उठे, "जो सुना है, वही काफी है। अब तुम मेरी बात सुनो। तुमने खुद को जब इतना स्वाधीन समझ लिया, तब जिसे लाए हो, उसका भार भी अपने कंधों पर लेना पड़ेगा। मैं तुम्हारी यह शादी स्वीकार नहीं करता।"

मतीश ने अपनी मां की ओर देखा। वहां भी इसी बात का नीरव समर्थन था। "अच्छा।" कहकर वह चला आया।

मां के कमरे के बाहर बरामदे के एक कोने में लज्जा और अपमान

का बोझ सिर पर लिए उसकी सद्यःपरिणीता स्त्री खड़ी हुई है—गांगुली-परिवार की प्रथम पुत्र-वधू, मगर गांगुली-परिवार ने उसे स्वीकार नहीं किया।

मतीश सूटकेस उठाकर बोला, "चलो मल्लिका !"

मल्लिका ने अपनी त्रस्त आंखें उठाकर एक बार पति के मुंह की ओर देखा। फिर चुपचाप उसके पीछे चल पड़ी।

सीढ़ी के पास ही रुकना पड़ा। छोटा भाई जितेश ऊपर आ रहा है। धोती लुंगी की तरह है, बिना बांहों वाली बनियान पहने हुए है और हाथ में टूथपेस्ट की ट्यूब और ब्रश है। देर से उठने की आदत है। अभी-अभी नींद टूटी है। उम्र की दृष्टि से दादा और उसमें ज्यादा अन्तर नहीं। लिखाई-पढ़ाई में बहुत अन्तर है। प्रथम वर्ष में ही दो साल कट गए, अर्थात् नाम कालेज के रजिस्टर में है, शरीर रहता है क्रिकेट-मैदान में। सीढ़ी पर खड़े होकर, इस तरह जैसेकि कुछ भी नहीं हुआ, उसने पूछा, "सूटकेस लेकर कहां जा रहे हो ?"

"जहां मेरी मर्जी। तू हट।"

"अरे, तुम तो भले ही जाओ, मगर नई बहू को कहां लिए जा रहे हो ?"

"इससे तुझे क्या मतलब ?"

"तो यानी किसी होटल-बोटल में जाकर रहोगे। तुम्हारे तो भाई-जान, साथी-संगी भी कहीं कोई नहीं। दुनिया में सिर्फ दो जगह जानते हो—घर और दरभंगा बिल्डिंग !"

मल्लिका दादा के पीछे थी। उसके आगे जाकर बोला, "ठहरो भाभी, पैर छूने का काम पहले कर लूं। गुरुजन हो न !"

झुककर मल्लिका के पैरों से एक उंगली लगाकर वह खुले गले से बोला, "मेरे इस भैया को तुम अभी तक समझ नहीं पाईं ! देखने में इतना लंबा-चौड़ा होने से क्या, बालिग होने में अभी बहुत देर है। बी० कॉम० होते हुए भी अक्ल निहायत कम है। आओ।" कहकर वह मल्लिका की पीठ पर हाथ लगाकर एक तरह से जबरन ही उसे मां के कमरे की तरफ ले गया। दरवाजे के आगे जाकर बोला, "अच्छा मां,

मैं तो तुम लोगों का कुपुत्र हूं, मूरख हूं, हर साल फेल होता हूं। मेरी बात की तो कोई कीमत ही नहीं, मगर कभी-कभार एकाध बात कहे बिना भी तो नहीं रहा जाता। नई बहू अगर होटल में जाकर रहेगी, तो क्या गांगुली-घराने का बड़ा नाम होगा?"

"तुझे पंचायत करने को किसने कहा जितू?" रूखे स्वर में सुहासिनी ने उत्तर दिया।

"नहीं, सो किसीने नहीं कहा, मगर गले में आने पर पंचायत करनी पड़ती है। जो हो गया, जिसे एक दिन मानना पड़ेगा, उसे शुरू से ही मान लेना क्या बुद्धिमानों का काम नहीं? यह सीधी-सी बात पिताजी को समझाकर नहीं कह सकीं? चलो भाभी···"

उत्तर का इंतजार न कर जितेश अपनी भाभी को सतीश के कमरे में ले गया। बोला, "यही तुम्हारा कमरा है। जंगल भी कह सकती हो। दुनिया-भर की पुरानी किताबें, और फटी मैगजीन। पढ़ने लायक कुछ नहीं पाओगी। सब बुक-कीपिंग, बैंकिंग और जाने क्या-क्या ऊलजलूल। इन्हीं चीजों में मग्न हैं, भूख लगी कि नहीं, यह भी दूसरे को बताना पड़ता है। कैसे अजीब आदमी के पल्ले पड़ी हो, दो दिन में ही पता चल जाएगा। मगर लगता है, अब सब ठीक हो जाएगा। क्या कहती हो?"

जितेश के हंसते चेहरे की ओर देखकर मल्लिका ने भी हंसने की चेष्टा की, मगर उसकी आंखें भर आईं। जितेश ने एक बार उधर आंखें उठाकर बात बदल दी, "अच्छा, तो अब तुम नहा-धो लो। बगल में ही बाथरूम है। मैं थोड़ी चाय की व्यवस्था देखूं।"

फिर स्वर नीचा कर बोला, "वह तो छोटी दीदी का डिपार्टमेण्ट है! देर से उठता हूं, इस बात को लेकर बड़ी भन्नाती है। अच्छा, कुछ दिन बीत जाएं, फिर कभी असमय में चाय-वाय की जरूरत पड़ी तो तुम्हारे पास ही आऊंगा। दोगी न?"

मल्लिका ने उत्तर देने की चेष्टा की, दे नहीं पाई। आंचल से आंखें पोंछकर सिर हिलाकर स्वीकृति व्यक्त की।

अगले दिन शाम से ही तरह-तरह के रंगों की, आकारों की गाड़ियां

गांगुली-भवन के गेट के आगे आकर इकट्ठी होने लगीं। आरोही कुछेक ही थे, आरोहिणियों (जनानी सवारियों) की संख्या ही अधिक थी। एक-एक कर वे सब दो-तले वाले हॉल में इकट्ठी हो गईं। पहले आपस में कोई घण्टाभर चर्चा-समीक्षा चली, फिर मतीश की पुकार पड़ी। वह अपनी अटारी में बैठा जाने क्या पढ़ रहा था। जितेश ने अदालत के हरकारे की अदा से दरवाजे पर आकर हांक दी, "एक नंबर असामी हाजिर है?"

"क्या बात है?"

"बात गम्भीर है। ऑनरेबल फुल-बेंच का हुक्म है—मतीश गांगुली का सिर ले आओ···क्विक!"

"कौन-कौन हैं रे?"

"कहा न, फुल बेंच। नाम चाहते हो? कागज-पेन्सिल लो। श्यामबाजार से आई हैं छोटी बुआजी और उनकी दोनों लड़कियां, गीता और रीता। भवानीपुर से बड़ी दीदी और उनके चार रत्न, नाम भूल गया। चोरबागान से मंझली चाची और पटलडांगा से छोटी दीदी की सास। उनके साथ में हैं उनकी देवरानी कल्याणी देवी। और कौन-कौन हैं, अगर कहो तो जाकर याद कर आऊं।"

"ठहर, और याद करने की जरूरत नहीं।"

मतीश कटघरे में आकर खड़ा हो गया, मौसी-बुआओं के आगे अपनी हठधर्मी की कैफियत देने के लिए। बात-बात के लिए शपथ-बयानी और साथ ही साथ चारों ओर से जिरह। मतीश ने सारी घटना और दुर्घटना का आद्योपान्त विवरण पेश कर दिया। सिर्फ एक वही बात नहीं बताई, जो एकान्त रूप से उसकी निजी थी, जिसका पृथ्वी पर और किसीको प्रयोजन नहीं—मूर्च्छित मल्लिका के पास कटे वे कुछ बिरले क्षण, जो उसकी इतने दिन की अभ्यस्त संकीर्ण जीवनधारा में न जाने कहां से भीषण बाढ़ का तीव्र प्रवाह ले आए हैं।

निर्णायक मण्डली ने फैसला सुनाना शुरू किया। बुआजी बोलीं, "सो तो सब समझ गईं, बेटे, मगर इतना तो तुम्हें भी समझना चाहिए था कि यह लड़की हमारे देश की नहीं, समाज की नहीं, वह कभी अपनी

नहीं होगी। इसके अलावा, बंगाल देश के गांव से कितनी कुशिक्षा, कितने रोगों के बीज लेकर आई है, कौन जानता है? यह क्या हमारे घर के योग्य है?"

मंजरी की साम मृदु कण्ठ से बोली, "जिसका वर शादी के आसन पर बैठते-बैठते बेमौत मर जाए, उस कुलक्षणा बहू को जानबूझकर कोई घर लाता है? पढ़े-लिखे होकर तुमने यह क्या किया?"

तीखे स्वर से चाची बोली, बहादुरी दिखाने की और जगह नहीं मिली तुम्हें? हो जाती उस बूढ़े के साथ शादी। हमें क्या? गांवों में गरीब लोगों में ऐसा ही होता है। अभी उसी दिन तो हमारा नौकर शादी करके आया है। सुना है, लड़की की उम्र है बारह साल, और यह आदमी बस मरने को बैठा है। वे लोग हमारे कौन होते हैं, जो लड़के का कर्तव्य-ज्ञान उफन पड़ा?"

"आया बड़ा कर्तव्य-ज्ञान!" बड़ी दीदी फट पड़ीं, "चांद-सा मुंह देखकर बच्चूजी का दिमाग ठिकाने नहीं रहा। कौन जाने क्या खिलाकर वश में कर लिया? सुना है, गांवों की औरतें बड़ी झाड़फूंक जानती हैं।"

"यह बात मैंने तो पहले ही कह दी थी दीदी," मंजरी ने योगदान किया, "बोलो दादा, जाते वक्त बार-बार सावधान नहीं किया था?"

सबसे पीछे गृहस्वामिनी ने मत व्यक्त किया, "लड़के को दोष देने से क्या होगा! बच्चा है, भूलचूक हो ही जाती है। बूढ़े होकर इन्होंने क्या किया? बार-बार मना किया कि जाने नहीं दो। न जाने कैसा देश, ऊपर से फिर गांव की बात। मगर सुनी मेरी बात? अरे दोस्त की शादी है; जाना चाहता है, जाने दो। अब भुगतो..."

अब बारी थी दो नंबर असामी—किसी-किसीके मत में प्रधान असामी—को पुकारने की। सतीश छुट्टी पाकर कमरे से निकलने वाला था कि लड़कियों की टोली गिरते-पड़ते घुसी। रीता गंभीर चेहरे से बोली, "बुलाकर क्या करोगी, मा? डेढ घण्टे पीछे पड़ने पर डेढ़ बात सुन पाई। सो भी उर्दू या तेलुगु, समझ में नहीं आई।"

तरुणियों का दल खिलखिलाकर हंस पड़ा। बड़ी दीदी की चमेली लोरेटो में जूनियर कैम्ब्रिज पढ़ती है। शब्दों को चबा-

बोली, "बड़े मामा, बहू के साथ एक इण्टरप्रेटर लाना चाहिए था। उसकी यह रस्टिक बँगाली तुम समझ लेते हो ?"

सतीश जाते-जाते बोला, "तेरी इस फिरंगी बंगला से तो ज्यादा ही समझ लेता हूं।"

चमेली का लंबा मुंह और भी लंबा हो गया। मंजरी की देवरानी कल्याणी बोली, "मगर कुछ भी कहिए, लड़की वाकई सुन्दर है। ऐसा रूप मेरे जान-पहचान वालों में तो मैंने नहीं देखा।"

"रूप है खाक !" मंजरी ने भौंहें सिकोड़ीं, "घोड़े-सा मुंह। आंखें देखो, लगता है, जैसे अफीम खाई हो। न बाल बांधना आता है, न कपड़े पहनना। सुबह आकर खड़ी हुई, तो सारे मुंह पर तेल ही तेल टपक रहा था। और फिर सारे माथे पर सिन्दूर का इतना बड़ा टीका लगा था। अरी मां !"

रीता बोली, "अब भी देखकर आई हूं, मुंह पर कैसा तेल ही तेल ! टॉयलेट का नाम ही नहीं सुना, तो व्यवहार क्या करेगी !"

कल्याणी बोली, "यही तो मैं कह रही थी। हम लोग यहां बैठी हैं, हम सबको देखकर कोई कह सकेगा कि टॉयलेट की कोई गलती रही है! मगर वह ये सब घिसे-पोते बिना ही ऐसी दिखती है, कोई खड़ी हो सकेगी उसके बराबर ?"

कल्याणी का यह स्पष्ट कथन महिलाओं में से कोई भी प्रसन्न मन से ग्रहण नहीं कर सकी। प्रसाधन का थोड़ा-बहुत चिह्न प्रवीणा-नवीना सभीके चेहरों पर साफ नजर आ रहा है। उसकी विधवा सास ने भी इस ओर कंजूसी नहीं की।

रीता फिर कुछ कहने जा रही थी, दरवाजे पर नजर जाते ही रुक गई। क्रिकेट की पोशाक पहने जितेश और उसके पीछे गांगुली-परिवार की नववधू ने कमरे में प्रवेश किया। सभीकी विस्मित दृष्टि मानो एक-साथ जुड़कर उसके झुके चेहरे पर जाकर टिक गई।

जितेश बोला, "आओ भाभी ! यहां जो बैठी हैं—इन हुल्लड़बाज छोकरियों को छोड़कर सभी तुम्हारी गुरुजन हैं। सबके पैरों में सिर ठोकने लगोगी तो बाद में 'आयोडेक्स' की जरूरत पड़ जाएगी। इससे तो अच्छा

तुम सबको एकसाथ साष्टांग प्रणाम कर दो।"

बड़ी दीदी रुष्ट स्वर से बोली, "हम औरतों के मामलों में तुझे किसने बुलाया? फालतू पंचपना करता फिरता है?"

"अरे बुलाया नहीं, तभी तो आना पड़ा, बड़ी दीदी! देख रहा हूं, गांगुली-घराने के मान-सम्मान को लेकर तुम लोग इतनी माथापच्ची कर रही हो। सभी कुछ सुना मगर सिर्फ यह बात समझ नहीं आई कि नई बहू के आने से तुम्हारा कौन-सा मान कहां जाता रहा!"

"अच्छा, अब तुम जाओ जिलू," कहकर कल्याणी ने आगे बढ़कर नई बहू का हाथ पकड़ा। कमरे के भीतर लाकर बोली, "आओ, मैं परिचय करा देती हूं।"

४

दीदी की गृहस्थी में सारे काम मल्लिका के हाथ में थे। रसोई करना, बर्तन साफ करना, कमरे नीपना, यहां तक कि गाय की सेवा करना। यहां उसको कोई काम नहीं। वह दो दिन में ही उकता गई। यहां रसोई करता है ब्राह्मण रसोइया; और कामों के लिए नौकर-चाकरों की पलटन है। सुबह-शाम चाय की व्यवस्था रहती है मंजरी के हाथों में। एक दिन साहस कर आगे आकर बोली, "मुझे थोड़ा करने दो न दीदी !"

मंजरी ने होंठ टेढ़े कर उत्तर दिया, "क्षमा करो भई, तुम लोगों का फूल-सा शरीर, ये सब मुश्किल काम सहन नहीं करेगा।"

इसके बाद मल्लिका फिर नहीं गई। अपने कमरे को झाड़-पोंछ लेती है। बाकी समय कटता ही नहीं। थोड़ा-बहुत पढ़ने-लिखने की चेष्टा करती है। किताब में मन ही नहीं लगता। आंखों में दीदी के घर में काटे वे दिन तैरने लगते हैं, जिन्हें वह पीछे छोड़ आई है। कर्मठ, कर्मशील दिन। सुबह से शुरुआत, काफी रात गए अन्त। एक नींद की गोद से उठकर दूसरी नींद की गोद में जा पड़ना। बीच में एक क्षण भी आलस्य का अवसर नहीं। जब याद आती है, आंखों से आंसू उमड़ पड़ते हैं। किताब के अक्षर अस्पष्ट हो जाते हैं।

इसी तरह एक दिन वह सुबह अपने कमरे में जंगले के पास बैठी किसी पुस्तक के पन्ने उलट रही थी। सतीश ऊपर अटारी में लिखने-पढ़ने में व्यस्त था। जितेश शायद अभी तक सोकर नहीं उठा था। नीचे शोर-

गुल सुनकर वह बरामदे में निकलकर आई। विशेष कुछ समझ में नहीं आया। धीरे-धीरे उतरकर गई। सुना कि रसोइया नहीं आया। बहुत दिनों बाद आज हठात् उसका मन खुशी से भर गया। मंजरी का मिजाज तो यों ही चढ़ा रहता है, आज वह सीधे सप्तम पर जा पहुंचा। मल्लिका डरती-डरती उनके पास पहुंचकर अनुनय के स्वर में बोली, "आज की रसोई मुझे करने दो दीदी!"

"रहने दे। मैं ही कर लूंगी।"

"तुम इन सब झंझटों में न पड़ो।"

"तुम कर लोगी?" कंधे उचकाकर मंजरी ने पूछा।

"कर ही लूंगी। वहां तो हमेशा मैं ही करती थी।"

"हे मेरे करम!" मजरी ने गालों से हाथ लगाकर आंखें फाड़ दी, "यह क्या तुम्हारे उस गावड़े की पूंइडांटा की चच्चड़ी है या लाउघण्ट! जानती हो, क्या-क्या बनेगा? रुईमाछ भुनी हुई, झींगा मछली की मसाले वाली तरकारी, पिताजी के लिए मांस का स्टू, जितू के लिए अण्डे के कोफ्ते! बना सकोगी ये सब?"

मल्लिका ने हताश स्वर में कहा, "यह सब तो मैं नहीं जानती भाई! रसोइया रोज जो बनाता है—सूप, रसा, भुजिया—ये सब तो मैं किसी तरह बना दूंगी, ऐसी आशा है।"

"अच्छा, बनाओ। मगर बहुत ज्यादा मिर्च मत डाल देना। तुम लोगों के उधर तो हरी मिर्च के अलावा और कोई मसाला ही नहीं।"

खाते वक्त गृहस्वामी ने प्रश्न किया, "ये सब चीजें किसने बनाई हैं मंजू?"

"तुम लोगों की नई बहू ने, पिताजी!"

सुनते ही विश्वनाथ बाबू गम्भीर हो गए। अन्त में देखने में आया कि थाली में कुछ नहीं बचा। यहां तक कि दो-एक चीजें पुनश्च: रूप में आईं, तो उन्होंने कोई आपत्ति नहीं की।

जितेश सुबह-सुबह कालेज चला गया था। एक बजे लौटकर खा-पीकर पेट पर हाथ फिराता-फिराता ऊपर आया।

"भाभी!"

"कौन, लालाजी?"

"हाथ लाओ।"

"क्या लाऊं?"

"अरे, हाथ बढ़ाओ न जरा!" कहकर इंतजार किए बिना उसने खुद ही भाभी का दायां हाथ खींचकर जोर से झकझोर दिया। मल्लिका अस्फुट स्वर में बोली, "उह, लगती नहीं?"

"देख लो, मामूली-सा कॉन्ग्रेचुलेशन सहन नहीं कर सकीं?"

"क्या मतलब?"

"ओ! तुम अंग्रेजी नहीं समझोगी। मगर मैं भी यह मरी बंगला भूल गया हूं।···हां-हां, याद आ गया। अभिनन्दन।"

"अभिनन्दन! किसलिए?"

"नहीं समझीं?"

इधर-उधर देखकर इस बार जितेश ने स्वर धीमा किया, "तुम लोगों के इस रसोइया महाराज का काढ़ा और छोटी दीदी का रसायन खा-खाकर पेट में जलन हो उठी थी। आज इतने दिन बाद भरपेट खाने को मिला।"

फिर थोड़ा और नजदीक सरककर बोला, "मगर अपने पैरों खुद ही कुल्हाड़ी मार ली, भाभी!"

"क्यों?"

"मां और पिताजी बातें कर रहे थे, 'रसोइया रखने की और जरूरत नहीं।' छिपकर सुन आया हूं। लगता है, तुम्हारी नौकरी परमानेण्ट हो गई।"

"यह तो मेरा सौभाग्य है, लालाजी! यदि वे लोग सचमुच ही यह भार मुझे दे रहे हैं, तब तो मैं बच गई।"

मल्लिका के दिन चाहे जैसे कटते हों, उसकी रातें मधुर स्वप्न की तरह कट जाती हैं। स्वामी के निविड़ सान्निध्य में उसका दिल धक-

धक करता है, कण्ठ रुद्ध हो जाता है, आंखों में आंसू आ जाते हैं। सोचती है, क्या मैं इतना सुख सहन कर सकूंगी ? बहुत रात तक सतीश को बाहर ही बाहर, ऊपर वाली अटारी में रहना पड़ता है। मां और पिताजी के कमरे का दरवाजा बंद होता है, उसके बाद वह नीचे उतर आता है। उस दिन जाने क्या जटिल चीज पढ़नी थी, लौटने में और भी देर हो गई। मल्लिका अभी तक जगी बैठी है। सतीश आकर उसकी गोद में सिर रखकर लेट गया। पति के लंबे-लंबे बालों में अंगुलियां चलाते-चलाते मल्लिका बोली, "तुम इतने गम्भीर क्यों हो गए हो ? हंसते नहीं, बोलते नहीं।"

सतीश उसका एक हाथ अपने हाथ में लेकर बोला, "किस मुंह से हंसूं मल्ली ? हम लोगों ने बड़े सुख से रखा है न तुम्हें !"

"ये सब बातें करोगे तो मैं सचमुच नाराज हो जाऊंगी। क्यों, मुझे क्या कष्ट है ? तुम पास में हो, यही तो मेरा परम सुख है। इसके अलावा, लालाजी हैं। उनके कारण मेरी क्या सामर्थ्य कि एक मिनट भी मन खराब करके रहूं ?"

"हां। अगर यह लड़का न होता···अरे, तुम्हें अभी तक बता नहीं पाया, मल्ली, मैं नौकरी देख रहा हूं। कलकत्ता से बाहर।"

"बाहर !" मल्लिका चौंक गई। सतीश बाहर चला गया, तो वह रहेगी कैसे ? उसकी वह त्रस्त आवाज सतीश के कानों में नहीं पहुंची। वह तो अपने ही स्वप्न में विभोर था। गांगुली-परिवार के हृदयहीन अवरोध से अपनी 'मल्ली' को दूर हटा देने का स्वप्न ! उसे और भी प्रगाढ़ रूप से पाने की कल्पना !! उसी आवेश-भरे स्वर में धीरे-धीरे बोला, "एक छोटा-सा घर। न सही ऐश्वर्य, फिर भी वह सिर्फ अपना तो होगा। वहां तुम्हें कोई दुःख नहीं होने दूंगा।"

असीम आनन्द में मानो मल्लिका के हृदय का स्पंदन रुक गया। झुककर लाजरक्त दायां कपोल पति के माथे पर रख दिया। मृदु गुंजन के स्वर में बोली, "मुझे यहां भी कोई दुःख नहीं।"

कोई महीनेभर के भीतर ही मतीश को नौकरी मिल गई। इलाहाबाद के किसी बैंक में असिस्टेण्ट अकाउण्टेण्ट।

पिताजी बोले, "तुम्हें नौकरी करने की क्या जरूरत आ पड़ी? एम० ए० पास कर लेते पहले!"

"एम० ए० प्राइवेट करने का विचार है।"

मां बोलीं, "घर छोड़कर इतनी दूर जा रहा है! क्यों? साल-भर बाद ये रिटायर हो जाते, इनके दफ्तर में ही लग सकता था। साहब ने वायदा किया है, ये कह रहे थे।"

"किसीकी बात पर भरोसा कर हाथ आई चीज छोड़ देना क्या ठीक होगा?"

मां ने इस प्रश्न का उत्तर नहीं दिया।

उस रात मल्लिका की आंखों में नींद नहीं आई। लगा, जैसे पति के सीने में मुंह छिपाते ही इतने दिनों के संयम का बांध बह गया। बहुत देर रो लेने के बाद मन जब कुछ हलका हुआ, तो बोली, "यह नौकरी तुम छोड़ दो। तुम्हारे बिना मैं एक दिन भी नहीं रह पाऊंगी।"

अपने हाथों से उसके चेहरे को पकड़कर अपनी ओर खींचकर सान्त्वना के स्वर में मतीश बोला, "इस तरह मन छोटा करने से तो काम नहीं चलेगा, मल्ली! तुम थोड़ी मजबूत न होगी, तो मुझमें जोर कहां से आएगा?"

उन दोनों का स्वप्न-जाल बुनना, और दोनों का मिलकर नीड़-निर्माण करने का स्वप्न बहुत रात तक चलता रहा।

जाने का दिन आया, तो जितेश स्टेशन पहुंचाने गया। गाड़ी रवाना होने से कुछेक मिनट पहले बोला, "इसी महीने आ रहे हो न?"

मतीश हंसकर बोला, "क्यों?"

जितेश नाराज हो गया। बोला, "क्यों का मतलब? जितने दिन वहां मकान-वकान नहीं मिलता, तब तक वह बेचारी रहेगी कहां, बोलो?"

"कहां क्या? जहां है, वहीं रहेगी, तू तो है ही।"

"सो तो है! मैं विकेट देखूंगा या तुम्हारी बहू को?"

"इस वक्त तो दोनों को ही देख।" कहकर मतीश गाडी में चढ़ गया।

दादा के चले जाने के बाद जितेश एक बार रोज ऊपर आकर मल्लिका की खबर ले जाता है। बाहर से 'भाभी' कहकर आवाज देता है, थोड़ी देर गपशप करता है, बुनने के लिए ऊन और पढ़ने के लिए पुस्तकें जुटाता है, छोटे-मोटे काम कर देता है।

एक दिन दोपहर के वक्त कमरे से निकलते ही देखा कि मंजरी दरवाजे के पास से हट कर तेजी से चली गई। भागने का तरीका उसे अच्छा न लगा। मगर इस बात को लेकर जितेश ने चूं भी नहीं की।

कुछ दिन बाद तीसरे पहर मल्लिका रसोई में चाय बना रही थी। मंजरी आकर बोली, "इस वक्त यह चाय किसके लिए ?"

"लालाजी पिएंगे।"

"कहां है वह ?"

"मेरे कमरे में।"

"चाय तो वह हमेशा नीचे ही आकर पीता है। आज तुम्हारे कमरे में क्यों ?"

"यह तो पता नहीं। पीना चाहा, सो बनाकर ले जा रही हूं।"

मल्लिका प्याला हाथ में लिए चली जा रही थी। मंजरी ने आवाज दी, "सुनो···"

वह मुड़कर खड़ी हो गई। मंजरी के गले से विष निकल पड़ा, "एक को खाकर पेट नहीं भरा; इस कच्चे को भी चबाकर खाना शुरू कर दिया !"

"क्या मतलब ?" मल्लिका ने शान्त, लेकिन तीक्ष्ण स्वर में जानना चाहा।

"इस सीधी-सी बात का मतलब नहीं समझती, इतनी बच्ची तो तुम नहीं हो बहू !"

मल्लिका की आंखों के तारों में सहसा विद्युत् खेल गई। सुवंकिम भृकुटियों के संधिस्थल पर गहरी कुंचन-रेखा दिखाई पड़ी। दवे गले से सिर्फ ये दो शब्द निकले, "छिः दीदी !"

उत्तर की प्रतीक्षा न कर वह द्रुतगति से ऊपर चली गई। मंजरी सिर्फ उस ओर देखती रही। उसकी आंखों में जितना क्रोध था, उससे कहीं अधिक विस्मय था। यह मल्लिका उसके लिए एकदम अपरिचित है। एक पल दृष्टि और मात्र एक बात से एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को इस तरह आहत कर सकता है, यह भी उसे पता न था।

मल्लिका के कमरे में घुसते ही जितेश ने उसके मुंह की ओर देखकर विस्मय के स्वर में कहा, "क्या हुआ, भाभी ?"

"क्या, कुछ भी नहीं।" चेहरे पर एक म्लान हंसी खींचकर मल्लिका बोली।

"रसोई में कौन था ??"

"कौन क्या ? दीदी कुछ काम कर रही थीं।"

"हूं ! क्या बोलीं ?"

"तुम्हें सब बताना जरूरी है ?"

"तुम छिपाओ, फिर भी मैं जानता हूं।"

"क्या जानते हो ?" मल्लिका चौंक गई।

जितेश ने उत्तर नहीं दिया। तुरन्त वह तूफान की तरह चला गया। मल्लिका भी साथ ही साथ बाहर आकर पुकारने लगी, "लाला-जी, सुनो···"

जितेश रुका नहीं।

उसी दिन दो चिट्ठियां सतीश के पास चली गईं। जितेश ने लिखा—'तुम्हारे मकान की क्या स्थिति है ? मुझे कुछ ही दिनों में दिल्ली जाना पड़ेगा।'

मल्लिका ने लिखा—'तुम्हें देखे कितने ही दिन हो गए। एक बार आओ। मेरा मन बड़ा छटपटा रहा है।'

५

इलाहाबाद पहुंचकर दोपहर को नौकरी करना और सुबह-शाम मकान तलाश करना—यही सतीश का रुटीन हो गया। सिर्फ मकान नहीं, साथ में ट्यूशन भी। सौ-डेढ़ सौ रुपयों की नाव पर चढ़कर ससार-समुद्र पार करने का साहस नहीं किया जा सकता। हर तरह के दुःख-दैन्य से मल्लिका की रक्षा करनी होगी। दीदी के घर वह अभाव के बीच बड़ी नहीं हुई, इस बात का प्रतीक है उसके शरीर का भरपूर स्वास्थ्य और अपूर्व लावण्य।

मल्लिका के उस छोटे गाव के साथ सतीश का परिचय बहुत थोड़ी देर का है। फिर भी थोड़े-से जितने भी लोगों को देखने का सुयोग उसे मिला, उनके शरीर पर वस्त्रों की कमी चाहे जितनी हो, मगर उनमें पुष्टि की दीनता दिखाई नहीं पड़ी।

नंगे और अधनंगे लड़के-लड़कियों के एक दल ने उसे घेर लिया था ताकि वे 'कलकत्ते के बाबू' नामक अजीव जीव को देख सकें। उन लोगों के चालचलन में बाहरी चकाचौंध तो न थी, मगर एक सरल-सहज स्निग्धता अवश्य थी। वयस्क लोगों से बातें कर इतना समझ में आया था कि उस इलाके के खेतों में धान है, ताल-तलैयों में मछली है, गायें दुधारू हैं और आम, कटहल, नारियल के जंगलों में सदा फल रहते हैं।

यशोहर जिले के किसी दूर दुर्गम देहाती इलाके में जंगल से घिरे इस गांव ने अपनी श्यामलश्री लेकर सतीश के मन के एक कोने को ढक दिया

था। यह बात वह हृदय में अनुभव करता है, इसी गांव की गोद में उसकी मल्लिका एक दिन कली के रूप में दिखाई दी थी और इसीके आकाशतले, इसीकी हवा का स्पर्श पाकर दिन पर दिन एक-एक कर उसकी रूप-माधुरी का सहस्रदल विकसित हुआ है। वहां से उखाड़कर लाकर इस ममताहीन रूखे वातावरण में उसे क्या देकर जीवित रखेगा, सतीश को यही एकमात्र चिन्ता है।

मल्लिका के पत्र के उत्तर में उसने लिखा—'और कुछ दिन कष्ट उठाओ, मल्ली ! मकान की तलाश में हूं। जिस दिन मिलेगा, उसी दिन आकर तुम्हें ले जाऊंगा।'

जितेश को लिखा—'अपना दिल्ली जाना इस वक्त ताक पर रख दे। जब तक मैं नहीं आऊं, तब तक अपनी भाभी को छोड़कर कहीं भी गया तो तेरी खैर नहीं।'

और कोई महीने-भर चेष्टा करने के बाद एक छोटा मकान मिल गया। साथ ही एक व्यावसायिक प्रतिष्ठान में शाम के वक्त दो घण्टे हिसाब-किताब का काम भी मिल गया। सतीश को लगा कि उस जैसा भाग्यवान और कोई नहीं। सात दिन छुट्टी लेकर कलकत्ता आया। आते ही सुना कि बुआजी की लड़की गीता की शादी है।

मां बोलीं, "उनके घर में यह पहला काज है। बहुत लोग इकट्ठे होंगे। बार-बार कह गई हैं, नई बहू को लेकर आना है। नहीं जाएंगे तो बुरा लगेगा।"

हारकर सतीश को राजी होना पड़ा।

उसी दिन शाम को सास के कमरे में मल्लिका की पुकार पड़ी। जाकर देखा कि कांटा और मोटी बही लिए गांगुली-परिवार का पुराना सुनार मोतीलाल बैठा हुआ है। सामने कई गहने रखे हैं। सुहासिनी-देवी बोलीं, "तो फिर यही तय रहा मोती—ब्रेसलेट और ऊपर हाथ का नाप ले लो। चूड़ी के नाप की जरूरत नहीं। एक चूड़ी उतारने से हो

जाएगा। मगर चीज मुझे सोमवार तक ही चाहिए।"

मल्लिका की ओर मुड़कर बोलीं, "अपनी एक चूड़ी उतार दो बहू!"

मल्लिका ने चूड़ी उतारकर सास के आगे रख दी। सुनार उठकर उसकी भुजा के ऊपर एक जड़ाऊ आर्मलेट रखकर बोला, "यही ठीक है, अम्मा! खूब फब रहा है, देखिए।"

फिर अपनी जगह पर जाते-जाते बोला, "आपकी बहू साक्षात् मां दुर्गा जैसी है। सजाइए न, कितना सजाएंगी।"

शाम के वक्त कपूरलाल बड़े बाजार से बनारसी साड़ियों का गट्ठर लेकर आया। दोतल्ले के बड़े हॉल में सौ पावर का बल्ब जलाकर मां-बेटी मिलकर कोई घण्टेभर तक छांटा-छांटी करती रहीं। तत्पश्चात् मल्लिका को बुलाया गया। दुकानदार एक बार उसकी ओर देखकर उच्च स्वर में बोल पड़ा, "रंग पसंद करने की और जरूरत नहीं, माजी! बहूरानी को सभी रंग फबेंगे। ये लीजिए···" कहकर उसने गहरे रंगों की चार-पांच दामी साड़ियां मल्लिका की तरफ बढ़ा दीं।

रात ग्यारह बजे जब मल्लिका सोने आई तो सतीश बोला, "सुना है, बड़े कपड़े-गहने मिले हैं?"

"लगता है, तुम्हें जलन हो रही है?" कहकर मल्लिका होंठ दबाकर हंस पड़ी।

सतीश ने उस हंसी में योगदान नहीं किया, वह जाने कैसा गम्भीर हो गया।

मल्लिका आगे आकर दायें हाथ से पति का गला पकड़कर बोली, "अरे तो गुस्सा क्यों करते हो? तुम्हें भी कुछ हिस्सा दे दूंगी, अब तो खुश हो?"

सतीश ने म्लान हंसी हंसकर कहा, "खुश होने की ही तो बात है। मगर तुम तो जानती नहीं, मल्लिका, ये गहने-कपड़े तुम्हारे लिए नहीं आए। आए हैं गांगुली-परिवार की मान-रक्षा के लिए।"

मल्लिका के चेहरे की हंसी विलीन हो गई। पति के ओर थोड़ा पास खिसककर बोली, "वाकई इस शादी में आते वक्त मुझे जाने कैसा

र-सा लग रहा है। इससे अच्छा, हम लोग पहले ही चले जाएं। मां
ौर पिताजी को समझा-बुझाकर कहें, तो निश्चय ही वे जबरदस्ती नहीं
करेंगे।"

"मैंने कहा है, वे लोग नहीं सुनेंगे।"

और अगले ही क्षण मतीश जाने कैसे उत्तेजित होकर बोला, "नहीं, नहीं, यह ठीक ही हुआ। शादी में तुम्हें जाना ही होगा। नहीं जाओगी तो समझेंगे कि भाग गए। इससे तो अच्छा, उन लोगों का अस्त्र उन्हींके विरुद्ध प्रयोग किया जाए। इन बनारसी साड़ियों और जड़ाऊ गहनों का अस्त्र! ये सब पहनकर, रानी की तरह सिर ऊंचा कर इन ओछे, ईर्ष्यालु, कुचक्री लोगों के बीच जाकर खड़ी हो जाओ। वे लोग अच्छी तरह देखें, देखकर जलें-भुनें। उनकी उस जलन को मैं अपनी आंखों से देखना चाहता हूं।"

मल्लिका पति के पास बैठकर उसके हाथ पर धीरे-धीरे हाथ फिराने लगी। इस शांत-शिष्ट निरीह व्यक्ति के हृदय में इतनी आग छिपी हुई थी, उसने सपने में भी किसी दिन नहीं सोचा था।

हां रुकी नहीं हैं, शायद भेदकर किन्हीं स्मृति-मुखर अतीत के दिनों में पहुंच गई हैं, जिनका पता मल्लिका को नहीं।

गहने पहनाते वक्त मंजरी ने फिर मुंह खोला, "ऐसा नेकलेस आजकल कोई पहनता है ? मां की भी कैसी पसन्द है ! और यह क्या ब्रेसलेट है। छि: !" कहकर वह कमरे से बाहर चली गई। अपने कमरे में गई। दरवाजा बंद कर अलमारी में से अपने गहनों का बक्सा उतारा। ढक्कन खोलकर बहुत देर तक उसी तरफ देखती रही। फिर अपनी तरफ देखा। शायद वह मंजरी याद आ गई, जिसके सर्वांग पर एक दिन ये सब गहने प्राणमय ज्योति की तरह सुशोभित थे। आज की इस मंजरी के लिए ये सब महज निष्प्राण स्वर्णपिण्ड हैं।

जल्दी से कुछेक गहने छांटकर वह मल्लिका के पास वापस आई। अब उसके कुशल हाथों से अंग-सज्जा चलने लगी। एक-एक स्तर पार हो और वह घूम-फिरकर चारों ओर से देखे, ठीक उसी तरह, जैसे एक शिल्पी अपने हाथ की गढ़ी देवी-मूर्ति को देखता है।

दीर्घ प्रसाधन-पर्व पूरा हुआ, तो वह पास आकर वहू के रक्ताभ कपोल पर एक छोटा-सा चुम्बन रखकर बोली, "दादा की ओर से थोड़ी-सी एक्टिंग की।" और कहते ही तूफान की तरह बाहर चली गई।

मल्लिका अपनी इस दुर्बोध-दुर्मुख ननद की ओर विस्मय-विमूढ़ नेत्रों से देखती रही। इतने दिन उसे जिस रूप में देखती आई है, उससे आज का यह रूप अलग है। यदि कुछ परिवर्तन आया है, तो कैसे आया, उसका क्या कारण है, वह नहीं जानती।

७

जितेश घर नहीं है । कई दिन पहले अपनी क्रिकेट की टीम लेकर दिल्ली या लखनऊ खेलने गया है। घर पर पांच प्राणी हैं। एक बड़ी गाड़ी में ही आ गए। जाने से पहले सतीश और मल्लिका ने गुप्तरूप से तय कर लिया कि उन्हें आखीर तक नहीं रुकना। दो-एक घण्टे बाद ही मल्लिका के सिर में भीषण दर्द होगा या जी मिचलाएगा और मंजरी के सहयोग से सतीश के ऊपर भार पड़ेगा उसे गाड़ी में बिठाकर घर पहुंचाने का। वे लोग टैक्सी लेकर घूमेंगे। आलोकोज्ज्वल कलकत्ता का विचित्र रूप देखेंगे। फिर काफी रात गए घर लौटेंगे। दो दिन बाद ही तो यह शहर छोड़कर चले जाना है। फिर कब आएंगे, कौन जानता है ?

मल्लिका उत्साहित होकर बोली, "बड़ा अच्छा होगा। सचमुच, बचपन से ही कलकत्ता की कितनी ही कहानियां सुन रखी हैं। एक दिन भी अच्छी तरह देखना नहीं हुआ।"

सतीश ने भार लिया है कि यह क्षोभ वह एक रात में ही दूर कर देगा। यह सारी व्यवस्था सफल होगी या नहीं, इस विषय में उन्हें संदेह कम नहीं था। बुआजी ने यदि छुट्टी न दी, मां यदि मुंह फेरकर बैठ जाएं, मंजरी मदद न करे—ये सारी सम्भावनाएं थीं। मगर एक सामान्य आकस्मिक घटना से उन लोगों का पथ सुगम हो गया।

तीन तले के एक सुसज्जित बड़े कमरे में आमन्त्रित महिलाओं की

महफिल जमी है। अत्युज्ज्वल तड़ितालोक के साथ होड़ कर रूप और वेशभूषा की दीप्ति जल रही है। उनके बीच कन्या भी है। वरपक्ष की एक वयस्क महिला कमरे में घुसते हुए बोली, "कहां है, हमारी बहू कहां है, बहूरानी कहां है ?" एक बार चारों ओर नजर डालकर वह मल्लिका के पास पहुंच गई। बोली, "शायद यह है ? वाह, सुना है, लड़की सुन्दर है। इतनी सुन्दर ! यह तो साक्षात् लक्ष्मी है। देखो, एकदम देवी-देवताओं का सा चेहरा है···"

मल्लिका बड़ी परेशान। शर्म के मारे सिर नहीं उठा पा रही। फिर भी वह इतना समझ रही है कि चारों ओर सारी आंखें उसीपर टिकी हैं और उनमें से कोई भी प्रसन्न नहीं है। इसी वक्त जाने किसने उसकी रक्षा की।

"यह रही दुलहन, इधर आइए दादीजी !" कहकर कोई उस वृद्धा का हाथ पकड़कर असली कन्या के पास ले गई। वह वृद्धा स्पष्टतः निराश ही हुई।

यह खबर जब दुलहन की मां के कानों में पहुंची, तो वह बौखला उठी। सबके बीच में जमकर बैठने की क्या जरूरत थी ? रूप है तो ठीक है, मगर इस बात पर इतना दिमाग किसलिए ? आई तो हो बच्चू गरीब-गुरबे के घर से। बर्तन मांजते-मांजते हाथों में छाले पड़ गए हैं। इस तरह के 'मधुर' वाक्यों का गुंजन कमरे-कमरे में होने लगा और ये सभी बातें मल्लिका के कानों में जा पहुंचीं। उसके सिर में सचमुच ही दर्द हो गया और चले जाने के प्रस्ताव पर स्नेहमयी अभिभाविकाओं के दल ने एकमत से सहमति व्यक्त कर दी।

एक बड़ी नई क्राइसलर गाड़ी है। जोर से हॉर्न बजाती-बजाती चौरंगी की छाती पर दौड़ी चली जा रही है। स्वामी के भुज-बंधन में पड़कर पीछे की सीट पर जब मल्लिका डूब गई, तो उसका दिल धुक-धुक कर उठा। सिर्फ वही एक बात दिमाग में आने लगी, इतना सुख वह सहन कर सकेगी ?

मतीश के विवाहित जीवन में इस दुर्लभ क्षण को इससे पहले एक बार भी आने का सुयोग नहीं मिला। आज शाम से वह मचल रहा है।

मन में उत्सव का ज्वार जग उठा है। सोचा कि यह उसके विवाह की रात्रि है। रूपैश्वर्य-मंडिता जिस अभिलाषा का उत्ताप सदैव उसके सर्वांग में व्याप्त है, वह मानो उसकी नव-परिणीता नववधू है। मल्लिका मानो आज ही प्रथम बार उसके जीवन में आई है। उसे वह और भी एकांत, और भी निविड़ सान्निध्य में पाना चाहता है। किसी मौके पर एकाएक जब दोनों मुंहों का व्यवधान अत्यन्त संकीर्ण हो गया, तो मल्लिका ने धीरे-धीरे पति को ढकेल दिया। ड्राइवर की तरफ उंगली कर फुसफुसाकर बोली, "वह देख रहा है।"

"उसके पीछे आंखें लगी हुई हैं क्या?" सतीश ने उसी तरह धीमी आवाज में कहा।

"वाह, तो इसीलिए…"

शेष बात कहने का मौका नहीं मिला। उनके लिए उस तरफ कोई सचमुच की आपत्ति थी, ऐसा भी नहीं लगा।

ईडन गार्डन को बायें रखकर, आउटराम घाट को छोड़कर, गंगा के तीर से चिपटती टैक्सी तीर-वेग से दौड़ी जा रही है। नदी देखकर मल्लिका का मन नाच उठा। जल वाले इलाके की लड़की है, उसके साथ उसका रक्त का संबंध है। प्रशस्त गंगा के वक्ष पर बड़े-बड़े जहाज लंगर डाले हुए हैं। उसी तरफ उंगली कर वह बोली, "वे क्या हैं?"

"कहां?"

"वही एक-एक मकान की तरह? कितने सुन्दर हैं देखने में!"

"अरी बांगाल! जहाज नहीं पहचानती?"

"वाह, मैंने कभी देखे हैं, जो पहचानूं?"

"ओह! असली चीज तो तुम्हें दिखाई ही नहीं।"

"क्या?" मल्लिका ने आंखें बड़ी कर कहा।

"हाईकोर्ट।"

"चलो न, देख आएं।"

इसपर सतीश हा-हा कर हंस पड़ा। मल्लिका भीतर का रहस्य नहीं पकड़ पाई, फिर भी इतना समझ गई कि बिना समझे वह कहीं कुछ मूर्खता दिखा बैठी है। पति को ढकेलकर सलज्ज कण्ठ से बोली, "हटो,

तुम तो खाली मजाक करते हो।"

रेसकोर्स के किनारे से जैसे ही गाड़ी ने पूर्व की ओर मोड़ लिया, गड़-गड़ कर हठात् बादल गरज उठे। साथ ही साथ आंखों में चकाचौंध करने वाली बिजली की चमक। मल्लिका पति के और भी करीब सरक आई। खिड़की से बाहर देखकर बोली, "अब घर चलो। लगता है, तूफान आएगा।"

"आया करे! पानी-तूफान में दौड़ने में ही तो मजा है।"

"नहीं, मुझे डर लगता है।"

"छि:, पगली!"

प्रगाढ़ भुज-बंधन और भी दृढ़तर हो गया।

कोई तीन घंटे घूमने के बाद वे लोग आमहर्स्ट् स्ट्रीट पहुंचे, उससे पहले ही जोर की बरसातें शुरू हो चुकी थीं। गाड़ी घर के आगे खड़ी की गई।

सतीश उतर पड़ा। मल्लिका भी उतरने को थी कि सतीश ने रोककर कहा, "ठहरो, पहले दरवाजा खुलवाऊं, नहीं भीगकर ढेर हो जाओगी।"

"तो होने दो; मैं उतरूंगी।" मल्लिका ने मृदु प्रतिवाद के स्वर में कहा। इतनी देर में सतीश गाड़ी का दरवाजा बंद कर आगे बढ़ गया। चौड़ा फुटपाथ पार कर सांकल खटखटाने को था कि हठात् एक तीखी चीख सुनकर उसने पीछे मुड़कर देखा। गाड़ी ने चलना शुरू कर दिया है।

"रुको, रुको, ए ड्राइवर! ए टैक्सी! चोर! चोर! पकड़ो!" चीखता-चीखता सतीश दौड़ने लगा। उसके मुंह पर ढेर-सा धुआं छोड़कर टैक्सी विद्युत्गति से अदृश्य हो गई।

रास्ता सुनसान है। दुकानें बंद हैं। सिर्फ लैम्प-पोस्ट साक्षी गोपाल की तरह खड़े-खड़े भीग रहे हैं। सतीश घर नहीं लौटा। रातभर मूसलाधार वृष्टि सिर पर लिए पागलों की तरह रास्तों पर घूमता रहा। तत्पश्चात् एकाएक ध्यान आते ही सुबह के वक्त खबर करने थाने गया। गाड़ी का नंबर मालूम नहीं। कौन-सी गाड़ी थी, यह भी याद नहीं कर पाया। मोटा-काला दाढ़ीवाला ड्राइवर—सिर्फ यही कुछ तथ्य थानेदारजी

जान सके।

अगले दिन सुबह आठ बजे जब वह एक रिक्शे में बैठकर घर लौटा, उसमें और चलने की शक्ति नहीं थी। लड़खड़ाता आंगन में आकर बैठ गया। मां भागी आई, "कहां था सारी रात? कैसी हालत हो गई [illegible]! और बहू कहां है?"

सतीश क्या उत्तर दे! घुटनों में सिर दिये, एक बार बोला, "सर्वनाश हो गया, मां!" और फफककर रो पड़ा।

पुलिस में उच्च पद पर गांगुली साहब के एक मित्र थे। मां टैक्सी लेकर उनके पास दौड़ीं। थाने-थाने में धूम मच गई। शहर में और शहर के बाहरी छोरों पर खोजबीन शुरू हो गई। एक स्टेशन से दूसरे स्टेशन तक टेलीग्राम दौड़ पड़े। देखते-देखते दो दिन बीत गए। [illegible]

ंजरी हुई है, उसकी चिन्ता नहीं करता। नर्व-शॉक दूर कर अच्छी होने में समय लगेगा। ट्रीटमेण्ट तो है ही। उससे भी ज्यादा जरूरी है, लांग एण्ड पेशेण्ट नर्सिंग। सहानुभूति के साथ सेवा। एक दिन, दो दिन नहीं, लगता है, कई महीने।"

कमरा लोगों से भरा है। सभी निस्पन्द हैं, चुपचाप डॉक्टर के मुंह की ओर देख रहे हैं। हठात् पीछे से भीड़ को चीरती मंजरी आगे आई। दृढ़ कण्ठ से बोली, "इसकी चिन्ता न कीजिए डॉक्टर काका! मेरे पास तो कोई काम नहीं है। यह भार मैं अपने ऊपर लेती हूं।"

"तुम कर सकोगी बेटी?" वृद्ध डॉक्टर ने संदेह के स्वर में कहा।

"क्यों नहीं कर सकूंगी?"

"यह अनाड़ी हाथों का काम नहीं। नर्सिंग के लिए अवश्य ही प्राण चाहिए, मगर उसके साथ चाहिए ट्रेनिंग।" गांगुली साहब के साथ परामर्श कर तय हुआ कि बहू को फिलहाल किसी नर्सिंग होम में भेजा जाए। वहां दो सुदक्ष नर्सें उसका भार लेकर रहेंगी। अविलम्ब उसकी व्यवस्था करने के लिए डॉक्टर साहब उठ खड़े हुए।

८

पहली बार जिस दिन मल्लिका को होश आया। उसने आंखें खोलकर चारों ओर थोड़ी देर देखा। आगे क्या याद करने की चेष्टा की। तत्पश्चात् क्षीण स्वर में बोली, "मैं कहां हूं ?"

सतीश पास ही था। उसके चेहरे पर झुककर बोला, "तुम घर में हो मल्ली, मेरे पास हो।"

"तुम ! नहीं नहीं," वह भीत कण्ठ से चीख उठी, "सरक जाओ। मुझे मत छूओ, मुझे छूना ठीक नहीं ···"

कहकर वह स्वयं खाट पर दूसरी तरफ उछलकर चली गई। सतीश ने दोनों हाथों से उसे खींचकर लाने की चेष्टा की। बोला "मैं, मैं ! मेरे पास हो तुम।"

"तुम्हारे पैरों पड़ती हूं, मुझे छोड़ दो ! मैं अशुचि हूं, अस्पृश्य हूं। मेरा सर्वनाश हो गया !"

चीख सुनकर सीनियर नर्स मिस सरकार दौड़ी आई। विरक्ति के स्वर में बोली, "क्या कर रहे हैं ! छोड़ दीजिए उसे।",

सतीश अपराधी की तरह उठ पड़ा। उत्तेजना के बाद मल्लिका ने हठात् क्लान्त बेहाल होकर आखें बंद कर ली। नर्स ने जल्दी से आगे बढ़कर उसकी नब्ज पर हाथ रखा।

सतीश को कड़ा हुक्म दिया गया—जितने दिन डॉक्टर की अनुमति न मिले, उतने दिन मल्लिका के कमरे में उसका प्रवेश निषिद्ध

। वह शाम होते ही नर्सिंग होम के दफ्तर में जाकर धरना दे देता है।
नस सरकार से मिलकर पूछता है—आज कैसी है ?

उत्तर प्रायः एक ही होता है—थोड़ी अच्छी है, मगर पहले जैसी ही है।

ऐसे वक्त इलाहाबाद से पत्र आया कि और छुट्टी देना सम्भव नहीं। यदि तुरन्त जॉयन न किया तो वे लोग और किसीको रख लेंगे।

उत्तर में मतीश ने तुरन्त त्यागपत्र लिख डाला। फिर जाने क्या सोचकर उसे धीरे-धीरे फाड़ फेंका। मल्लिका की वे बातें याद आ गईं, 'चलो, हम इस शादी से पहले ही चले चलें। मां और पिताजी को समझाकर कहेंगे तो वे और जबरदस्ती नहीं करेंगे।'

उसे लेकर गृहस्थी बसाने का स्वप्न अभी खत्म थोड़े ही हो गया है।

मंजरी रोज एक बार आकर देख जाती है। उस दिन उसे थोड़ा स्वस्थ देखकर बोली, "भगा क्यों दिया री ? बेचारा रास्तों में सूखा मुंह लिए घूमता फिर रहा है।"

मल्लिका का चेहरा करुण हो गया। बोली, "उन्हें तुम देखो, भाई !"

"मैं देखूं ! माने ? तू क्या घर नहीं जाएगी ? इस अस्पताल में और कितने दिन लेटे रहना चाहती है, बता ?"

"घर जाने का रास्ता तो और नहीं रहा, दीदी !"

"यह कैसी बात !"

मल्लिका थोड़ी देर चुप रहकर बोली, "जो मैं खो चुकी हूं, उससे ज्यादा बड़ी चीज औरत के लिए और क्या है, भाई ? यह बात वह तो नहीं समझ सकते, मगर औरत होकर तुम तो समझती हो। यह देह क्या अब उनके पैरों में रखी जा सकती है, या इससे उनकी सेवा हो सकती है ?"

मंजरी ऊष्ण कण्ठ से बोली, "देख बहू, तेरी ये सब पंडिताऊभ बातें सुनकर मेरे शरीर में आग लग जाती है। देह की बात कहती है मगर इसे बचाने का तो कोई उपाय तेरे हाथों में नहीं था।"

सारा जीवन देकर अपने स्वामी का प्रेम चाहती हैं, मैं समस्त अंतःकरण से अपने स्वामी की घृणा चाहती हूं। बता सकती हो, क्या करने से वह मिल सकती है?" कहते-कहते उसकी आंखें भर आईं।

मंजरी किसी बात का जवाब दिए बिना गुस्सा कर चली गई। घर पहुंचकर तूफान की तरह सीधे दादा के कमरे में जा घुसी। तिक्त कण्ठ से बोली, "परी देखकर खो गए थे; अब भुगतो! जंगली पक्षी को घर लाकर रखने से ही वह पालतू हो जाता है, कभी अपना बन जाता है?"

उसी रात सतीश इलाहाबाद चला गया।

९

नर्स के साथ रोगी का जो सम्पर्क है, उसे वे दोनों चुपचाप कब पार कर गईं, मिस सरकार और मल्लिका में से किसीको पता नहीं चला। आज उनका वास्तविक सम्पर्क क्या है, वे नहीं जानतीं। सिर्फ इतना जानती हैं कि वे एक-दूसरे के अन्तःकरण के आमने-सामने खड़ी हैं और बीच में कोई अन्तराल नहीं है।

उस दिन मंजरी के चले जाने के बाद मल्लिका बहुत देर तक उसी तरह निढाल होकर पड़ी रही। अन्तहीन विचारों के गहन अतल में डूब गई। मिस सरकार कब आकर उसकी चारपाई के एक सिरे पर बैठ गई, उसे पता नहीं चल सका। पता चला उस वक्त, जब उसका दाहिना हाथ उसके हाथ में आकर लगा। चौंककर उठ बैठी, "ओ मा! तुम कब आईं?"

मिस सरकार इसका जवाब न देकर बोली, "मंजरीदेवी ठीक ही कहती हैं। संसार में बचे रहने के लिए बहुत कुछ भूलना पड़ता है।"

"भूल नहीं पा रही आई!"

"मैं कैसे भूल गई?"

"तुम?"

"हां, मैं।"

मल्लिका करवट बदलकर नर्स की गोद में हाथ रखकर बोली, "तुम भी मेरी ही तरह…"

मिस सरकार हंसकर बोली,"हां, तुम्हारे साथ जो हुआ, उससे बहुत कुछ मिलता है। थोड़ा-बहुत अलगाव भी है। मैं जिन लोगों के शिकंजे में पड़ी थी, उन्होंने मुझे टैक्सी में नहीं बिठाया। मुंह में कपड़ा ठूंसकर कंधे पर चढ़ाकर एक मैदान में जा पटका था। काम पूरा हो जाने पर जब दया कर मुक्ति दे गए, तब मेरे भाग्य में तुम्हारी तरह ऐसा नर्सिंग होम नहीं लिखा था, मुझे मिली थी सिर्फ एक पेड़ की छाया। वहां से अपने निढाल शरीर को खुद ही खींच-घसीटकर जब घर ले गई, तो मिला धक्का।"

"क्या कहती हो !" मल्लिका चौंक गई।

"हां। अवश्य ही गला पकड़कर धक्का किसीने नहीं मारा, मगर बहुत कुछ ऐसा ही हुआ। उसके बाद बचा सिर्फ रास्ता। कलकत्ता आई। कैसे, सो मत पूछो। कई बार कई लोगों के सम्पर्क में आकर अन्त में जब बाहर आई, तो एकदम विधिवत् परीक्षा-पास नर्स। आज कौन कहेगा, यह रमा सरकार नोआखाली के एक प्रसिद्ध गांव के स्वनाम-धन्य मित्र वंश की लाड़ली बेटी वही वन्दना है ?"

"नाम भी बदल डाला !"

"आदमी ही जब नहीं रहा, तो तुच्छ नाम को बनाए रखने से क्या लाभ होता, मल्लिका ?"

मल्लिका ने कुछ देर जाने क्या सोचा। फिर बोली, "मगर एक बात है, दीदी ! बहुत कुछ पा चुकी हो, समझ गई। घर तो नहीं बसा सकीं।"

"ठीक ही कहती हो, लेकिन उसका कारण जो तुम सोचती हो, सो नहीं है। कारण यह है कि घर से बाहर करने वाले अनेक सुहृद् होते हुए भी बाहर से घर लाने वाला संगी आज तक एक भी नहीं आया।"

"यदि वैसा साथी मिल जाए, तो क्या अपनी ओर से मन-प्राण से उसका संसार चला सकोगी ?"

"क्यों नहीं ?"

मल्लिका करुण कण्ठ से बोली, "मगर मैं तो नहीं चला पा रही, भाई ! मेरा देवता जैसा स्वामी है। उसके चेहरे की ओर देखकर मेरा कलेजा फट जाता है। फिर भी तो उसकी पुकार का उत्तर नहीं दे पाती।"

मल्लिका की आंखें छलक उठीं। मिस सरकार अपने आंचल से सस्नेह आंसू पोंछकर कोमल कण्ठ से बोली, "मैं सब जानती हूं, बहन! मगर तुम्हें अपनी ये किताबी बातें भुलानी पड़ेंगी। तुमने बहुत पढ़ा है, बहुत सीखा है। वे सब तत्त्व की बातें हैं। जीवन के मध्य से जब खिंचाव आता है, तो ये सब किसी काम नहीं आतीं। उस वक्त इन सबको झाड़-फेंककर सीधे खड़े होना पड़ता है।"

मल्लिका बोली, "नहीं दीदी, तुम गलती कर रही हो। जिसे लिखना-पढ़ना कहते हैं, वह मैंने किसी दिन भी नहीं सीखा। ठेठ गांव में ब्राह्मण-पंडित के घर पड़ी हुई हूं। थोड़ी-सी बंगला और संस्कृत सीखी है। और वह सब मुझे याद भी नहीं। जीवन में मैंने अगर कुछ पाया है, तो पुस्तकों से नहीं पाया। पाया है आदमी से। मेरे भीतर जो कुछ देखती हो, वह सब इस एक ही आदमी की देन है।"

"कौन हैं वह?"

"मेरी किशोरावस्था के गुरु मेरी दीदी के पति।"

नौकरानी ने आकर बताया कि डॉक्टर साहब ने मिस सरकार को बुलाया है। नर्स जाते-जाते बोली, "अब उठकर मुंह-हाथ धो लो। तुम्हारा खाना यहीं लाने के लिए कहती हूं।"

मिस सरकार क्या कह गई, यह मल्लिका ने शायद सुना ही नहीं। उसके कानों में तो यादव तर्करत्न का स्नेह-गम्भीर उदात्त कण्ठस्वर गूंजने लगा।

याद आया, एक दिन किसी प्रसंग में उन्होंने कहा था, 'यह जो मानव-देह हम धारण करते हैं, इसे तुच्छ मत समझो, मल्लिका! देह तो देवता का मंदिर है। इसे शुद्ध-पवित्र रखकर ही इसमें देव-प्रतिष्ठा सम्भव है। तुमने लड़की का जन्म लिया है। आज नहीं, कल एक दिन तुम्हें पति-वरण करना पड़ेगा। उस आसन पर आकर जो खड़े होंगे, अपना यह देह-मन उनके पैरों में शुद्धिभाव से समर्पित कर सको, इस बात का ध्यान रहे—ठीक उसी तरह, जैसे हम लोग देवता के पैरों में फूल चढ़ाते हैं। मन में रखो, मल्लिका, सुन्दर, निष्कलंक फूल ही देव-भोग्य होता है। जो फूल घूरे पर गिर पड़ा, जिसे कोई पैरों से कुचल गया, वह देव-पूजा में

कभी नहीं लगता।'

ये बातें मल्लिका के अन्तःकरण में जमकर बैठ गई हैं। कौन जानता था कि एक दिन उसके स्वयं के जीवन में ही इन बातों की मूल्य-परीक्षा की जरूरत पड़ेगी ? मगर जब सचमुच ही जरूरत पड़ी, घर बसाते न बसाते ही उस घर को नष्ट करने की पुकार पड़ी, और सहसा तूफानी हवा से उसकी यौवनारति की सद्यःसज्जित दीपमाला बुझ गई, तो उसने सब कुछ फेंककर अपनी सारी शक्ति लगाकर इस निर्मम कठिन आदर्श को ही जा पकड़ा।

मन ही मन कहने लगी, 'प्रथम ज्ञानोदय के साथ जिसे सत्य कहकर स्वीकार किया है, उसकी मर्यादा किसी भी तरह नष्ट न हो। उसके लिए कितना ही बड़ा मूल्य क्यों न देना पड़े, दूंगी। यह उच्छिष्ट देह त्यागनी पड़ेगी, तो त्यागूंगी, मगर इससे मेरे देवता की पूजा असम्भव है।'

१०

देखते-देखते कोई तीन महीने बीत गए। मल्लिका बहुत कुछ स्वस्थ हो गई है। नर्सिंग होम के इस सस्नेह आश्रय से विदा लेने का दिन द्रुत गति से चला आ रहा है। लगता है, मल्लिका शायद छोटी खाट पर लेटी-लेटी यही बात सोच रही थी। भोर हुए काफी देर हो गई। और रोज वह अब तक उठ जाती थी। आज जैसे कोई तकाजा नहीं। जंगले में से चुपचाप धूप से प्रकाशित आकाश की ओर देख रही थी। मिस सरकार नाश्ते की प्लेट लिए कमरे में घुसते हुए बोली, "अरे, तुम अभी तक लेटी हो!"

"उठने की इच्छा नहीं करती, भाई!"

नर्स मुंह दबाकर हंसी, "क्यों?"

"कई दिन हो गए, लगता है, जैसे शरीर में बल नहीं रहा। कुछ भी खाने को जी नहीं करता। सिर उठाते ही शरीर घूमने लगता है।"

मिस सरकार मेज ठीक करते हुए बोली, "यही तो होगा। तुम खा सको न खा सको, मगर हम लोगों के लिए अब यह भरपेट मंदेश खाने का मौका है।"

फिर थोड़ा रुककर मल्लिका की संदिग्ध आंखों की ओर देखकर बोली, "समझ नहीं पा रही! नोटिस नहीं मिला?"

मल्लिका ने आंखें झुका ली। न जाने कहां से उसके दुर्बल पीले चेहरे पर एक हलकी लाली उतर आई, मगर वह सिर्फ क्षण-भर को।

अगले ही क्षण नर्स ने डरते हुए गौर किया कि उस चेहरे पर खून की एक भी बूंद नहीं। गोया कि वह एक सफेद कागज है। दोनों आंखें न जाने किस गहन आतंक की छाया से भर उठी हैं!

मिस सरकार हाथ का काम फेंककर दौड़कर आगे जाकर उसके बिस्तर पर बैठी ही थी कि मल्लिका हठात् उसकी छाती पर जा गिरी और आर्तकण्ठ से चीख पड़ी, "यह क्या सुना दिया, दीदी! तुम जानती हो, जो आ रहा है, वह मेरे गर्व का धन है, या कलंक का टीका है?"

नर्स के मुंह में इस बात का उत्तर फौरन ही नहीं आया। वह तो उसे बस कलेजे से चिपटाकर उसके सारे शरीर पर हाथ फिराने लगी। कुछ देर बाद अस्फुट स्वर में बोली, "ऐसी बातें नहीं करते। छिः!"

मंजरी आई अगले दिन तीसरे पहर। मिस सरकार के मुंह से खबर पाकर दौड़ती-दौड़ती आई। चौखट के उस तरफ से ही खुशी का स्वर, "क्यों पंडितानीजी, तुम्हारे लेक्चरों की टोकरी अब तो ताक पर पहुंच गई? घर नहीं जाओगी! ऐसी बुरी बात भगवान कभी सहन कर सकते हैं? गर्दन पकडकर लाने के लिए प्यादा भेज दिया। कैसी जब्त हुई हो!"

पास आकर बैठते ही मल्लिका शुष्क कण्ठ से बोली, "बड़ा डर लग रहा है, दीदी!"

"जा मर! डर किसका? बच्चा जैसे तेरे ही हो रहा है, और किसी के कभी नहीं हुआ।"

"नहीं, भाई, सो बात नहीं…"

"रहने दे, तुझे कोई बात कहने की जरूरत नहीं।"

हठात् गम्भीर होकर बोली, "सच, हंसने की बात नहीं बहू! अब तुम अकेली नहीं रहीं। पेट में हम लोगों का लड़का है। गांगुली-परिवार का प्रथम वंशधर। उसकी मान-मर्यादा है, कल्याण-अकल्याण है। अब और इस नर्सिंग होम में पड़े रहने से काम नहीं चलेगा। पिताजी को जाकर कहती हूं। वह डॉक्टर को सारी बात समझा देंगे।"

मल्लिका की वह रात प्रायः बिना निद्रा के कटी। उसे लेकर विधाता का यह कैसा कौतुक है! अब तक जो समस्या थी, क्या वही काफी नहीं थी? उसपर फिर यह क्या परीक्षा! 'गांगुली-परिवार का प्रथम

वंशधर !' मंजरी के मुंह से यह बात सुनने के बाद भी उसका सारा कलेजा आनंद से, गौरव से क्यों नहीं भर गया ? अन्तर् के अन्तःस्थल से कुत्सित सर्प की तरह एक विषाक्त संदेह सिर उठा बैठा। उसका सारा अस्तित्व हिल उठा।

सुबह की हवा में जाने कब आंखें बंद हो गई थीं। नींद खुली, उस वक्त सारा कमरा सुबह की कोमल धूप से भरा हुआ था। जल्दी से आंखें धोकर आई तो देखा कि जूनियर नर्स मीरा उसके कपड़े लिए खड़ी है। उसकी तरफ देखकर बोली, "अरे भाई, थोड़ा-सा कागज और कलम दे सकती हो ?"

"चिट्ठी लिखोगी ?" वह अल्पवयसी लड़की मुंह दबाकर हंसी।

मल्लिका ने सिर हिलाया।

"बड़ा कागज चाहिए ?"

"हां, बड़ा ही दे दो।"

बहुत दिनों बाद वह दीदी को यह लंबी चिट्ठी लिख रही है। शुरू में थोड़ी-सी शिकायत, अभिमान—तुम लोग विदा कर निश्चिन्त हो गए हो। एक बार मालूम भी नहीं करना चाहते, वह मर गई या जिन्दा है। इत्यादि। इसके बाद लिखा—बड़ा डर लगा था, दीदी ! ठेठ गांव की मूरख लड़की। वे लोग किस नजर से देखेंगे। मगर ज्यों-ज्यों दिन बीत रहे हैं, देखती हूं, जैसे सब लोग मेरे लिए ही रास्ता देख रहे थे। जैसा देवर, वैसी ही ननद। और तुम्हारा बहनोई ? उसकी बात नहीं लिखूं तो ठीक।

सबके अन्त में रही उनके चरम सर्वनाश की बात। उस दुर्घटना की रात, नलिन होम, पति, ननद, मिस सरकार और इस समस्या-जड़ित सन्तान का आविर्भाव। सभी कुछ निष्कपट भाव से सविस्तार बताकर लिखा—दीदी रानी, अब तुम लोग बताओ, मैं किस रास्ते पर चलूं ! जीजा साहब का प्रत्येक उपदेश मेरे लिए अनघ्य गुरु-मंत्र है। इतने दिन उसीके प्रकाश में तय किया है। हठात् तूफान आ गया। और कुछ नहीं देख पा रही। आज नये निर्देश की आवश्यकता दिखाई पड़ी है। इतनी बड़ी आवश्यकता मेरे जीवन में और कभी नहीं

दिखाई दी।

उत्तर आया सात-आठ दिन बाद। कुछ पंक्तियां दीदी की हैं, साथ ही कुछ पन्ने जीजा साहब के हैं।

कुशल प्रश्नादि के बाद तर्करत्न ने लिखा है—आदमी के जीवन में तूफान आता है, और निकल जाता है। जो क्षति वह कर जाता है, उसका चिह्न भी एक दिन लुप्त हो जाता है। तूफान क्षण-भर का होता है, मगर सूर्यालोक शाश्वत होता है। तूफान की बात याद न रखो, सूर्य का अर्थात् ध्रुव का आश्रय लो।

इसके बाद लिखा है—तुम मां बन रही हो, मल्लिका! बस, यहीं तुम्हारे सारे प्रश्नों, सब समस्याओं का समाधान हो गया। हमारे शास्त्रों में लिखा है, नारी का परिपूर्ण रूप है मातृ-रूप। अन्यत्र वह खण्डिता है, अपूर्ण है। सन्तान के भीतर वह पुनर्जन्म-लाभ करती है। उसकी समस्त सत्ता एक इस क्षुद्र शिशु की सत्ता में विलीन हो जाती है। तब वह इस शिशु-देवता की सेवादासी होती है। वही उसका एकमात्र परिचय है। अपना कहने को अब उसके पास और कुछ नहीं रहता। तुम्हारी अब कोई समस्या नहीं।

चिट्ठी का उपसंहार मल्लिका ने बार-बार पढ़ा—तुम्हारे विवाह के साथ ही साथ मेरी गुरुगीरी का काम खत्म हो गया, भाई! अब तुम्हारे गुरु एवं पथ-निर्देशक तुम्हारे स्वामी, मेरे परम स्नेहास्पद सतीश-जी हैं। वह जो कहें, वही तुम्हारा मंत्र है। वह जहां ले जाएं, वहीं तुम्हारा तीर्थ है।

चिट्ठी को कलेजे से लगाए मल्लिका बहुत देर तक आंखें बंद किए रही। मन ही मन कहने लगी—'तो ऐसा ही हो। मैं और सोच नहीं पा रही!'

मंजरी की चिट्ठी पाकर सतीश फिर कलकत्ता आया। डरता-डरता मल्लिका के कमरे में घुसा। दूरी रखकर एक स्टूल पर बैठ गया।

मल्लिका के मन में फिर वही भयंकर प्रश्न उठ खड़ा हुआ, जिसका उत्तर उसने निज सरकार से जानना चाहा था। मगर पति की उदार, मग्न, स्नेहयुक्त आंखों की ओर देखते ही वह प्रश्न उसके मन में ही रह गया। अपनी देह में प्रथम मातृत्व की सूचना की बात याद कर उसके अभी-अभी शोकयुक्त हुए चेहरे पर एक लाजभरी मृदु हंसी फूट पड़ी। उसीके दुर्निवार्य आकर्षण से मनीश आगे बढ़ा। मल्लिका का एक हाथ अपने हाथों में लेकर मृदु स्वर से बोला, "मैंने सब सुन लिया है, मल्ली! डॉक्टर से भी बात कर ली है। कुछेक दिनों में ही हम लोग तुम्हें घर ले जा सकेंगे।"

घर की बात सुनते ही मल्लिका का अन्तःकरण फिर चौंक गया। क्षीण कण्ठ से बोली, "किन्तु···"

"और कोई 'किन्तु' नहीं," मनीश ने बाधा देकर कहा, "सारे 'किन्तु', सारी दुविधाएं झाड़-फेंककर तुम अपने को मेरे हाथों में छोड़ दो।"

मल्लिका के कान मानो सुधा से भर गए। यही तो उसके गुरु का निर्देश है—'वह जहां ले जाएं, वहीं तुम्हारा तीर्थ है।'

और कोई बात उसके होंठों पर नहीं आई। उसका क्लान्त हाथ पति की गोद में जा गिरा।

इसके कुछ ही दिन बाद गांगुली-परिवार के सिर पर फिर वज्रपात हुआ। सुहागिनीदेवी सीढ़ियां चढ़कर ऊपर जा रही थीं। हठात् सिर में चक्कर खाकर गिर पड़ीं। प्रेशर का खेल। पहले भी एक-दो बार बाजीगरी दिखा गया है। वह डाक्टर के बार-बार मना करने पर भी सावधान नहीं हुईं। इस बार उसका नतीजा सामने आ गया। लड़के घर पर नहीं, पति दफ्तर में थे। मंजरी अपनी बीमार सास को देखने गई हुई थी। नौकर-चाकर मिलकर संज्ञाहीन देह को किसी तरह कमरे में ले गए।

डॉक्टर के आने से पहले ही वह उसके नियन्त्रण से बाहर चली गई। जितेन उस वक्त दिल्ली या लाहौर में कहीं चंट मारता घूम रहा उसे खबर मिलने में देरी हो गई। उसके आने से पूर्व ही सारे

फिर सीधे नर्सिंग होम पहुंचकर
सम्पन्न हो गए। सब देखा-सुना,
रना दे दिया।

"भाभी !" दरवाजे के बाहर से ही उसने अपने स्वाभाविक ऊंचे
गले से पुकारा। मल्लिका भड़भड़ाकर उठकर बैठ गई।

"तुम अब तक बिस्तरे पर पड़ी हुई हो !" बिना भूमिका के कठोर
प्रश्न किया।

"नहीं, भाई ! उठकर तो बैठी हूं।"

"तो फिर, जा कब रही हो ?"

"कहां ?"

"कहां माने ? तुम्हारा मतलब क्या है, जरा खोलकर बताओ तो,
भाभी ! मां ने तो खूब छुट्टी ली। इधर छोटी दीदी का वारंट आ गया
है, उसकी ससुराल से। बुढ़िया सास जाऊं-जाऊं कह रही है। हम लोगों
को क्या अब बेमौत मारना चाहती हो ? अच्छा है, जो खुशी करो।
मेरा क्या ? मूर्ख आदमी हूं, बैंट कंधे पर रखकर एक तरफ निकल
पड़ूंगा। मगर इस बूढ़े आदमी को कौन देखे, और तुम्हारे इस नाबालिग
नी-कॉमजी को ही कौन संभाले ?"

मल्लिका निविष्ट मन से सोच रही थी। दो मिनट इंतजार क
जतेश ने फिर हांक मारी, "सोच क्या रही हो ? उठती हो या कंधे प
बिठाऊं ?"

"वाव्वा ! तो क्या एकदम घोड़ा कसकर ही आए हो ?"

"घोड़े पर नहीं, मोटर में। तुम भूल रही हो, यह राजस्थान न
है, बीसवीं शताब्दी का कलकत्ता शहर है। यहां बहुएं घोड़े पर चढ़
ससुराल नहीं जातीं, मोटर में बैठकर जाती हैं।"

"जाओ बच्चू, ले आओ अपनी मोटर।"

"वाह, इसीको तो कहते हैं अच्छी लड़की। उठो, चटपट तै
करो। अरे, ये लोग सब कहां गए ?"

"कौन लोग ?"

"तुम्हारी नर्सिंग होम रेजीमेण्ट ? डाक्टर, नर्स, नौकर-नौ
दरवान एण्ड को ?" कहकर हांक-हूंक शुरू कर दी।

११

गाड़ी गांगुली-बाड़ी के आगे आकर रुक गई। उतरते वक्त मल्लिका के पैर हठात् कांप उठे। साथ ही बिजली की तरह उसकी आंखों में ऐसा ही एक और मेघाच्छन्न दिन तैर आया—जिस दिन वह वधू-वेश में स्वामी का हाथ पकड़कर पहली बार यहां आकर खड़ी हुई थी। देखते-देखते कितने ही दिन बीत गए।

उस दिन इस फुटपाथ का व्यवधान पार कर इतनी बड़ी अट्टालिका के प्रशस्त द्वार पर पैर रखते ही उसके सिर्फ पैरों में ही नहीं, कलेजे में भी अपरिचित आशंका का झटका लगा था—क्या यहां उसे जगह मिलेगी? अगले ही क्षण समझ गई थी कि वह आशंका निर्मूल नहीं। गांगुली-बाड़ी ने उसे ग्रहण नहीं किया। और उस कठोर अस्वीकृति की लांछना और वेदना दिल में दबाए वह जब वापस चली जा रही थी, तब···

लगता है, अपने अनजाने ही मल्लिका के स्निग्ध कण्ठ से निकल पड़ा, "लालाजी···!"

जितेश गाड़ी के पीछे खड़ा होकर सामान उतार रहा था। जल्दी से आगे बढ़कर उत्तर दिया, "क्या है, भाभी?"

मल्लिका ने जवाब नहीं दिया, सिर्फ दायां हाथ देवर की ओर बढ़ा दिया। उसके रोग से पीले हुए दुर्बल चेहरे की ओर एक बार देखते ही जितेश मन ही मन कह उठा, "इस्, तभी तो! दिमाग में बिलकुल ही नहीं आई। चलो, पहले तुम्हें पहुंचा आऊं।"

उसी दिन की तरह वह हाथ पकड़कर भाभी को धीरे-धीरे लेकर चल पड़ा। शायद जितेश को वह बात याद न हो, मगर मल्लिका नहीं भूली, कभी नहीं भूलेगी। उसका अपना कोई भाई नहीं। इस बात को लेकर उसके मन में बड़ा क्षोभ रहता था। मगर उस दिन, उसके जीवन में एक महासंधि क्षण में, इस लड़के ने आकर अकस्मात् किस तरह उसका सारा क्षोभ, सारा अभाव एक क्षण में मिटा दिया था, यह बात सोचते ही उसके प्रति स्नेह, श्रद्धा, कृतज्ञता से मन भर उठता है।

"लालाजी," जाते-जाते मल्लिका ने देवर के मुंह की तरफ आंखें उठाकर मृदुभाव से हंसकर कहा, "उस दिन की बात याद है?"

"कौन-सा दिन?"

"वह दिन, जब मैं तुम्हारे दादा के साथ पहली बार तुम लोगों के घर में घुसी थी?"

"सब याद है।"

"उस दिन यदि इस तरह मेरा हाथ पकड़कर···"

"उस बात को रहने दो, भाभी!"

मल्लिका ठिठककर खड़ी हो गई।

जितेश के गले में ऐसा करुण स्वर उसने कभी नहीं देखा। उसका विस्मय-भाव दूर होने से पहले ही जितेश फिर बोला, "उस घटना के भीतर हम लोगों की बड़ी शर्म छिपी है।"

"शर्म क्यों कहते हो? उन लोगों की दृष्टि से देखें···"

"नहीं, किसी भी दृष्टि से उस व्यवहार का समर्थन नहीं किया जा सकता।"

"मगर उसके बाद मुझे जो मिला है, उससे उस दिन का सारा क्षोभ मेरे मन से धुल गया है।"

"इसका कारण है, तुम्हारा यह सुन्दर मन। और कोई होता, तो इतनी आसानी से नहीं धो सकता था। वैसे हम लोग भी बदल गए हैं, वह गांगुली-बाड़ी अब नहीं रही। मगर उसमें हम लोगों की कोई बहादुरी है, सो मत सोचना। वहां भी तुम्हीं हो। तुमने उसे जीत लिया।"

मल्लिका अब तक जितेश के गले से हलका स्वर ही सुनती आई

है। आज की यह गम्भीरता एकदम नई है। वह चिरदिन चंचल है, शोरगुल चीख-चिल्लाहट लिए रहता है। जैसा भरपूर गला, वैसा ही भरपूर प्राण। उसके भीतर एक ऐसी प्रशान्त-स्निग्ध गम्भीरता आत्म-गोपन किए बैठी है, यह कौन जानता था?

उसकी आखिरी बात के प्रतिवाद में जाने क्या कहने जा रही थी, पर इसी बीच वे सोमनदर दरवाजा पार कर आंगन में आ पहुंचे।

मंजरी रसोई में थी। हठात् बाहर आई तो एकदम भौचक। साथ ही चीख पड़ी, "ओ काली दासी, जल्दी से एक कुर्सी ले आओ। देखो इन लोगों की बात! जो आदमी तीन महीने से बिस्तरा छोड़कर नहीं उठा, उसे हाथ पकड़कर खींचते-खींचते ले आया! पूछती हूं, तुममें अकल कब आएगी, जितू?"

"वह तारीख तो मैं तुम्हें फिर आकर बता दूंगा, छोटी दी! फिल-हाल तो तुम अपने इस सचल लगेज का चार्ज लो! मैं अचल चीजों की व्यवस्था करता हूं।"

"अभागा कहीं का!" कहकर मंजरी ने आगे बढ़कर उसके हाथ से मल्लिका को लेकर कुर्सी की तरफ पैर बढ़ाते हुए कहा, "बैठकर थोड़ा सुस्ता लो। तबीयत खराब तो नहीं लग रही? लेटोगी?"

"नहीं-नहीं, लेटूंगी क्या? चलो न, ऊपर चलकर ही बैठूंगी।"

"रहने दे, इतनी बहादुरी दिखाने की जरूरत नहीं। चुप कर बैठ न थोड़ी देर यहां। मैं एक प्याला दूध गर्म करके लाती हूं।"

"दूध!" गोया कि मल्लिका कोई भयंकर दुःसंवाद सुनकर सिहर उठी हो। इसके बाद कातर स्वर में बोली, "तुम्हारे पैरों पड़ती हूं, दीदी! दूध में बड़ी बुरी बू आती है।"

काली दासी एक पंखा लेकर 'भाभी रानी' को हवा कर रही थी। सिर हिलाकर समर्थन करते हुए बोली, "ऐसी हालत में यही होता है, हर चीज में बू आती है। मेरी छोटी लड़की जब पेट में थी…"

"रहने दे, तुझे और वकालत करने की जरूरत नहीं।" मंजरी झल्ला उठी। मल्लिका की ओर मुड़कर बोली, "तो और क्या लेगी, बता! एक थाली पान्ता भात और एक दर्जन हरी मिर्च?"

"सचमुच दोगी दीदी ?"

ऐसे करुण स्वर में बात कही कि सभी हंस पड़े।

सीढ़ियों के ठीक शुरू में ही सास का कमरा है। उस दिन इसी दरवाजे के आगे खड़े होकर सतीश ने मां को आवाज देकर कहा था, 'तुम्हारी बहू ले आया।' उनका वह उत्तर आज भी उसके कानों में गूंज रहा है। वह आवाज अब कभी सुनाई नहीं देगी। दरवाजे पर लटकता यह ताला मानो इसी रूढ़ सत्य को आंख में उंगली डालकर दिखा रहा है। उस दिन ससुरजी दिखाई नहीं दिए थे, पास के कमरे से उनका सिर्फ क्रुद्ध स्वर ही सुन पाई थी। आज वह हंसते चेहरे से बाहर निकल आए।

मल्लिका के आगे बढ़कर पैर छूते ही उसके सिर पर हाथ रख-कर सस्नेह आह्वान किया, "आओ बहू!" फिर लड़की की तरफ मुड़कर बोले, "इस कमरे की चाबी कहां है, मंजू ?"

"लाती हूं।"

वह दौड़कर अपने कमरे से चाबी लेकर आई, तो बोले, "खोलो।"

इस कमरे में मल्लिका ने आज पहली बार पैर रखा।

सास ने अपने कमरे में मल्लिका को कभी नहीं बुलाया था, वह खुद भी नहीं गई थी।

विश्वनाथ बाबू ने एक बार चारों तरफ नजर दौड़ाई। शायद एक दीर्घ निःश्वास निःशब्द दबा गए। तत्पश्चात् हठात् लड़की से प्रश्न किया, "दादी की याद है तुझे, मंजू ?"

"थोड़ी-थोड़ी याद है।"

"थोड़ी-थोड़ी क्यों ? मुझे तो बुढ़िया एकदम साफ याद है।"

यह जवाब था जितेश का। वह कब आकर सभीके पीछे खड़ा हो गया था, कोई जान नहीं सका।

मंजरी बोल पड़ी, "सुना पिताजी ? अच्छा, यह तब कहां था ?"

"यह, शायद हुआ ही नहीं था।" कहकर वह सरक गए।

विश्वनाथ बाबू पुत्रवधू को संबोधित कर कहने लगे, "वह जितने दिन जिन्दा रहीं, इसी कमरे में रहीं। उनसे पहले रहती थीं उनकी सास, यानी मेरी दादी। यही इस घर का नियम है। उसी हिसाब से,

आज से इस कमरे पर तुम्हारा अधिकार है। कम उम्र की हो तो क्या, गांगुली-बाड़ी की बहू हो। मंजु, चाबी अपनी भाभी को दे दो। और कहा क्या है, सब दिखा दो। तुम्हारी मां को तो यह सब करने का भी समय नहीं मिला।"

धीमे उदास कण्ठ से ये कुछ बातें कहते-कहते विश्वनाथ बाबू धीरे-धीरे बाहर चले गए।

मल्लिका वहीं स्तब्ध खड़ी रही। एकाएक ध्यान गया कि मंजरी झुककर उसके आंचल में चाबी बांध रही है।

१२

शादी के कई महीने बाद एक दिन काफी रात गए सतीश ने उसे एक कविता पढ़कर सुनाई थी—रवीन्द्रनाथ की 'नववर्ष'—

'पुरातन वत्सर जीर्ण क्लांत रात्रि।
ओइ केटे गैलो। ओरे यात्री।
तोमार पथेर परे तप्त रौद्र एनेछे आह्वान।'

(पिछला वर्ष और जीर्ण क्लांत रात्रि। अरे यात्री, यह सब बीत गया। अब तो तुम्हारे रास्ते पर तपती धूप का आह्वान है।)

इस प्राचीन वंश में अनेक स्मृतियों से जुड़े इस प्रशस्त कमरे में खड़ी मल्लिका को सहसा लगा, जैसे उसके जीवन में भी उसी तरह का एक दीर्घ प्राचीन वर्ष अपनी सारी क्लांति और जीर्णता लेकर अभी-अभी बीत गया। अब जहां तक भी नजर जाती है, उसके आगे धूप से प्रकाशित दीर्घ पथ प्रसारित है। यह वर्ष मानो एक तमसाच्छन्न तरंग-संकुल नदी की तरह था। बड़े कष्ट के साथ उसे तैरकर पार कर अभी-अभी किनारे पर आई है।

संसार में बड़े-बड़े दुःखों के भीतर होकर ही महत् प्राप्ति का रास्ता जाता है।

मल्लिका ने गृहस्थी अपने हाथों में संभाल ली। रसोइया है, मगर नाममात्र को। रसोई के अधिकांश कामकाज उसीको करने पड़ते हैं। जिस दिन नहीं कर पाती, उस दिन ससुरजी यह नहीं हुआ, वह नहीं

हुआ कहकर शिकायत करते हैं, आधा पेट खाकर दफ्तर चले जाते हैं।

खाने के वक्त रोज सामने जाकर बैठती है। ससुरजी गम्भीर आदमी हैं। बातचीत बहुत ज्यादा नहीं करते, मगर मल्लिका उनके मन की बात जान जाती है।

एक दिन विश्वनाथ बाबू कह भी बैठे, "जानती हो बहू, मैं मां का इकलौता लड़का था। मां आकर पास में नहीं बैठती थी तो खाना नहीं खाता था। लगता है, बुढ़ापे में वही आदत फिर लौट आई।"

जितेश अपने क्रिकेट-साथियों का दल-बल लेकर आता है। जब-तब 'भाभी' कहकर हांक लगाता है। बेवक्त चाय की फरमाइश करता है।

और बीच-बीच में आती है मिस रमा सरकार। मल्लिका उसे अपने शयनकक्ष के कोने में ले जाकर बिठाती है और घण्टे पर घण्टे अटकाए रखती है।

रमा बीच में कहती है, "अब चलूं।" मल्लिका रोक लेती है।

"ड्यूटी है न।" नर्स समझाती है।

"रहने दो ड्यूटी। यह मरी नौकरी तुम छोड़ दो।"

"सर्वनाश! नौकरी छोड़कर खाऊंगी क्या? तुम्हारे लड़का होने पर आया की नौकरी दे दो, तब तो छोड़ भी दूंगी, मगर उसमें तो अभी कई महीनों की देर है।"

मल्लिका ये सब बातें कानों में नहीं जाने देती। रमा के चेहरे की ओर देखकर बहुत कुछ जैसे अपने से ही कहती है, "घर नहीं, बंधन नहीं, सिर्फ तैरते-तैरते चक्कर काटना। भला यह क्या औरत की जिन्दगी है?"

"क्या करूं भाई? कोई राजकुमार नौका सजाकर तो आया नहीं। तैरूं नहीं तो जाऊं कहां?"

"ये सब बेकार की बातें। असल में गृहस्थी की तरफ तुम्हारा मन नहीं।"

"शायद यही हो। ऐसे खुले मैदान में बिना रोक-टोक चरने को मिले, तो नाहक का जुआ कंधे पर कौन रखना चाहेगा, बताओ?"

मल्लिका को लगा कि भले ही यह बात परिहास के स्वर में कही

गई है, अंत में जाने कैसा एक करुण स्पर्श लिए है। उसके मन को भी स्पर्श करती उसकी छाया उसके चेहरे पर जाकर पड़ी।

कुछ देर उस ओर देखने के बाद रमा बोली, "तो सुनो, एक कहानी सुनाती हूं। यह मैंने अपने फुफेरे भाई से सुनी है। वह थे एक बहुत बड़े राजा के लड़के के प्राइवेट सेक्रेटरी। सिर्फ राजा का लड़का ही नहीं, ऊपर से नामी आर्टिस्ट। इसके अलावा और जो हुआ करता है, अर्थात् सिनेमा और उसके आस-पास जो सब 'ऐब' रहते हैं, उन सबने धीरे-धीरे उसे ग्रस लिया।

"राजकुमार अब घर नहीं आए। राजा अभी जिन्दा थे। गुस्से में आकर उन्होंने पुत्र को उत्तराधिकार से वंचित कर दिया और बहूरानी के लिए रोज नई साड़ियां, गहने और पुस्तकें मंगाने लगे, गाने-बजाने का सरंजाम जुटाने लगे। जरा भी हिलती-डुलतीं, चारों ओर से चार दासियां दौड़ पड़तीं। ऐसी उसकी खातिर!

"हठात् एक दिन बहूरानी को जाने क्या सूझी। नौ बजे के वक्त प्राइवेट सेक्रेटरी के घर घूमने के लिए निकल पड़ी। सौ रुपये का नौकर। मेरी भाभी उस वक्त आंचल बांधकर रसोई नामक अपनी झुपड़िया में बैठी मछली भून रही थी। मैली धोती पर हल्दी के दाग लगे थे। सारा शरीर पसीने और कालिख से भरा था। दादा अपने एकमात्र संबल बिना हत्थे की एक कुर्सी को कंधे पर रखकर दौड़ पड़े। उस ओर ध्यान न देकर बहूरानी सीधी रसोई के दरवाजे पर जाकर खड़ी हो गई। भाभी हड़बड़ाकर बाहर निकलकर बोली, 'यहां आपको कष्ट होगा। उस कमरे में चलिए।' वह बोली, 'तो होने दो। यहीं बैठती हूं। आप रसोई बनाइए।' कहकर अपने-आप एक पीढ़ा खींच लिया। मछली भूनने का काम चलता रहा। रसोई धुएं से भरी थी। बहूरानी बार-बार आंखें पोंछने लगी। भाभी फिर बोली, 'आपको बड़ा कष्ट हो रहा है।' लगा, जैसे यह बात उसके कानों में नहीं पहुंची। उस कालिख-लगी जालों-भरी अंधेरी कुठरिया में चारों ओर नजर घुमाने के बाद बहू-रानी धीरे-धीरे बोली, 'अगर एक ऐसी रसोई मुझे मिल जाती...'

"खैर, छोड़ो, अब मैं चलती हूं।" कहकर मिस सरकार जल्दी से

उठ खड़ी हुई ।

मंजरी को प्रायः ही ससुर-बाड़ी भागना पड़ता है । कभी-कभी सात-आठ दिन बाद आकर हाथ-पैर पसारकर लेट जाती है । तब मल्लिका जबरन दो दिन रोक लेती है और उसकी प्रिय चीजें बनाकर खिलाती है ।

मंजरी कहती है, "तेरी नीयत अच्छी नहीं लगती बहू ! यह पाग-पात खिला-खिलाकर लगता है, मुझे भी बागाल बना डालना चाहती है ?" यह कहकर वह और थोड़ी-सी बड़ू डांटा वाली मटर दाल या हरे धनिये का लाउपंट मिला लेती है ।

मल्लिका दिन-भर काम कर सबका मन जीतकर काफी रात गए जब सोने जाती है, तो निःसंग पंखा की तरफ देखकर उसका मन रो पड़ता है । बिस्तरे पर न जाकर किसी-किसी दिन वह कागज-कलम लेकर चिट्ठी लिखने बैठ जाती है । तरह-तरह की छोटी-छोटी बातें सोच-सोचकर लिखती है, फिर अपने को और रोक नहीं पाती, 'मेरे इन सुख के दिनों में तुम पास नहीं, अब और नहीं सह पाती ।'

सतीश उत्तर देता है, 'मल्ली, अब तक तो तुम सिर्फ मेरी थी । तुम्हें बहुत ही छोटा संकीर्ण बनाकर पाया था । आज तुम सभीके बीच छिटक गई हो । अब तुम्हें नये रूप में बड़ा बनाकर पा रहा हूं । अपने इस आनंद को रखने के लिए मेरे पास जगह नहीं । तुमसे दूर रहकर भी मैं तुम्हें जकड़े हुए हूं । मैं तुम्हारे पास नहीं आऊंगा । तुम मेरे पास आओगी । हम लोग नये सिरे से यात्रा शुरू करेंगे । उसी दिन की प्रतीक्षा में दिन गिन रहा हूं ।'

१३

देखते-देखते महीना पूरा हो आया। सास नहीं है, परिवार में बड़ी-बूढ़ी कोई आत्मीय भी नहीं है। एक ननद है, मगर उसके जीवन में तो कभी किसी शिशु के पद-चिह्न नहीं पड़े। फिर है भी बच्ची, हर वक्त रह भी नहीं सकती। अतएव मल्लिका को फिर उसी नर्सिंग होम में जाना पड़ा। फिर एक दिन हठात् शुरू हो गई यम-यंत्रणा, जिसके हाथ से किसी भी मां का निस्तार नहीं। सारी रात यम-मानुष की खींचतान के बाद सुबह जाकर उसकी गोद में आया गोद भरने वाला लड़का।

ससुरजी ने आकर गिन्नी देकर मुंह देखा।

मंजरी और जितेश ने आकर कुछ देर हा-हुल्ला मचाया।

सात-आठ दिन बाद आया मतीश।

मल्लिका ने गुस्से में कहा, "इतने दिन बाद याद आई ?"

मतीश ने उसका उत्तर न देकर कहा, "इस्, बड़ा छोटा है।"

मल्लिका खिलखिलाकर हंस पड़ी, "ओ मां, छोटा नहीं होगा, तो क्या पेट से निकलते ही भागने लगेगा ?"

मतीश निराश स्वर में बोला, "ले जाने लायक बड़ा होने में तो अभी बहुत देर है !"

मल्लिका ने बंकिम नेत्रों से स्वामी की ओर देखा, "लगता है, बाबूजी को अब और सबर नहीं ?"

कुछेक दिन बाद नौकरानी सुबह बच्चे के तेल मालिश कर रही थी।

मल्लिका पास बैठी स्निग्ध दृष्टि से बार-बार देख रही थी। नौकरानी बोल उठी, "क्यों जी, लड़के का मुंह किसीपर नहीं गया; न बाप पर, न मां पर।"

मल्लिका का अन्तर्मन धक् कर उठा। इस बात का अर्थ क्या है? झुककर लड़के को खूब अच्छी तरह देखने लगी। सच ही तो है! यह किसका चेहरा है?

"कैसा लाल सुर्ख हुआ है, देखो," नौकरानी फिर बोली, "बड़ा होकर काला होगा। मा की बराबरी तो करेगा क्या, बाप का रंग भी नहीं लिया।"

मल्लिका का सिर हठात् घूम गया। कलेजे में जाने कैसा होने लगा। वह आखें बंद कर वहीं लेट गई।

"क्या हुआ?" कहकर नौकरानी लड़के को छोड़कर उठ पड़ी। दोनों हाथों से मल्लिका की परिचर्या में लग गई। कुछ देर छाती और पीठ की मालिश होने के बाद मल्लिका ने थोड़ा स्वस्थ महसूस किया। उठकर बैठती हुई नौकरानी से लड़के को उसकी गोद में देने के लिए कहा।

नौकरानी कहने लगी, "आहा! हुआ करे काला, न सही मां-बाप की तरह। बच्चा रहे। लड़के का चेहरा क्या देखना? लो, थोड़ा दूध पिलाओ। मेरे बच्चे का गला सूख गया है।"

मल्लिका के कानों में शायद उसकी एक भी बात नहीं गई। वह तेज नजरों से अपने नवजात शिशु की ओर देखती रही।

अगले दिन लड़के को देखने आईं बुआजी। साथ में बड़ी दीदी। इधर-उधर की बातों के बाद भतीजी से बोलीं, "देख मल्लिका, कैसा हट्टाकट्टा हुआ है बच्चा! देखने में कैसा संडा-मुंडा-सा है···" कहकर उन्होंने एक खास ढंग से आखें मटकाईं।

बड़ी दीदी बोलीं, "यह तो मैंने आते ही गौर कर लिया, बुआजी! और फिर देखा नहीं, सिर कैसा गोल और कितना बड़ा है? हमारे परिवार में ऐसा किसीका नहीं।"

"क्या पता, भाई! दादा का पहला नाती है; धन की धारा में

मिलेगा, हर कोई ऐसी ही आशा करता है, मगर यह तो एकदम गोत से अलग···" कहकर एक दीर्घ निःश्वास छोड़कर बुआजी उठ पड़ीं।

"तो चलती हूं बहू !" कहकर बड़ी दीदी भी उनके पीछे-पीछे चल पड़ीं। उनके वंकिम होंठों की अर्थपूर्ण हंसी मल्लिका की नजरों से छिपी न रही।

उन लोगों के चले जाने के बाद मल्लिका कुछ देर वज्राहत की तरह बैठी रही, फिर धीरे-धीरे बिस्तरे पर जाकर लेट गई।

नौकरानी ने बार-बार चिन्ता प्रकट की तो मल्लिका ने सिर्फ इतना कहा, "तबीयत अच्छी नहीं है।"

रमा आकर देख गई, डॉक्टर भी एक बार चक्कर लगा गया। सभीकी बात का बस यही एक उत्तर दिया।

क्रमशः सन्ध्या हुई। रात बढ़ती गई। रसोइया आकर रात का खाना रख गया। मल्लिका उठी नहीं, खाने को हाथ भी नहीं लगाया। इसके बाद जब नौकरानी सो गई, मल्लिका बड़ी सावधानी के साथ बिस्तरे पर से उठी और लालटेन उठाकर सोते लड़के के चेहरे की ओर देखती रही।

नौकरानी को अभी तक नींद नहीं आई थी। हठात् नजर पड़ी तो पूछ बैठी, "क्या देख रही हो ?"

"कुछ नहीं।" जाने कैसे दबे गले से मल्लिका ने उत्तर दिया।

"तुम कोई चिन्ता न करो। लड़का ठीक है। आराम से सो रहा है। तुम जाकर लेट जाओ।" कहकर नौकरानी करवट बदलकर लेट गई। कुछ ही देर में उसकी नाक आवाज करने लगी।

उस दिन मल्लिका की विपर्यस्त विचारधारा किस रूप में, किस रास्ते से निकली, यह मालूम करने का कोई उपाय नहीं। नर्सिंग होम में किसीसे भी उसका कोई विशेष विवरण प्राप्त नहीं होता। कब, किस हालत से गुजरकर वह उस भयंकर परिणाम पर जाकर पहुंची थी, यह भी लगता है, हमेशा अज्ञात ही रहेगा।

मल्लिका के समस्त अन्तर्मन को मथकर जो तूफान उठा था, उसके विपुल वेग की हम सिर्फ कल्पना कर सकते हैं। और अनुमान कर सकते

है कि एक अभागिन माँ ने प्रायः सारी रात लालटेन हाथ में लिए बार-बार दौड़कर अपनी नवजात प्रथम संतान के बिछौने जाकर खड़ी हुई होगी। संशयाकुल विह्वल दृष्टि से परखना चाहा था कि उसका परिचय क्या है।

इसके बाद किसी मौके पर सिर हिलाकर मन ही मन कहा था—उन लोगों की बात ही सच है। इस लड़के के साथ मेरा योग सिर्फ नाड़ी का, रक्त-मांस का है, आत्मा का योग नहीं है। यह गांगुली-वंश का कोई नहीं; उसकी नामहीन, गोत्रहीन अवांछित सन्तान है। किसी के लिए कोई कल्याण लेकर नहीं आता; उसके इतने दुःखों से निर्मित नीड़ को, इतने सुख से सजाए संसार को सिर्फ नष्ट करने आता है। इस मांसपिण्ड की प्रत्येक रक्त-बिन्दु में उस अभिशप्त रात्रि की लज्जा, पाप और कलंक घुला हुआ है। जीवन-भर वह वीभत्स स्मृति इसके भीतर जीवित रहेगी, जो प्रतिदिन, प्रतिक्षण उसके नारी-जीवन की चरमतम ग्लानि की बात याद दिलाती रहेगी।

लगता है, यही बात सोचते-सोचते किसी वक्त उसकी प्रशान्त आँखों के नीचे तलों में आग जल उठी थी। मस्तक की शिराएं छिटक-कर बाहर आने को हो गई थीं। इस दुःसह यंत्रणा से उसने बार-बार दौड़कर जाकर गुसलखाने में नल के नीचे अपना सिर रख दिया था, मगर उसकी स्नायुतंत्री की परत-परत में जो अनल-ज्वाला परिव्याप्त थी, उसे पानी ठंडा नहीं कर सका।

इसके बाद अपनी गीली केशराशि को लेकर वह अपने बंद खाट के पास वापस आ गई। बच्चा उस वक्त जागकर रो रहा था।

बगल वाले कमरे में एक रोगिणी ने वह रोना सुना था, और सुना था बीच-बीच में उसके [illegible] का चीत्कार—'चुप कर! चुप हो!' साथ ही साथ धम-धम कर पैर चलाने की आवाज। उस रोगिणी में उठने की शक्ति नहीं थी। पहले मल्लिका, फिर नौकरानी का नाम लेकर बार-बार पुकारा था। किसी ने उत्तर नहीं दिया।

न जाने कैसे हठात् नौकरानी की नींद टूट गई। हड़बड़ाकर उठकर बैठी तो नजर गई—मल्लिका बच्चे के बिस्तरे पर झुककर जाने क्या देख_

रही है। फटे-फटे गले से कह रही है, "क्या हुआ ? बच्चा रो क्यों रहा है ?" इसके बाद दौड़कर लालटेन लेकर आते ही चीख पड़ी, "एँ ! खून ! इतना खून कैसे ?"

नौकरानी ने दौड़कर जाकर देखा कि बच्चे की छोटी-सी काया पत्थर की तरह निश्चल है, उसकी शुभ्र सुन्दर शैया खून से भरी है। उसके कुछ कहने से पहले ही नीरव रात्रि का कलेजा चीरता नारी-कण्ठ का तीव्र आर्तनाद फूट पड़ा, "अरे, तुम लोग उठो, दीदी, डॉक्टर बाबू, मीरा, जल्दी आओ !"

नौकर-चाकर, नर्सों का दल दौड़ा आया। ऊपर से हड़बड़ाते डॉक्टर बाबू दौड़ते आए। उन सबकी ओर देखकर मल्लिका के श्लथ कण्ठ से पैशाचिक अट्टहास निकल पड़ा, "हा-हा-हा ! खून—मैंने खून किया है। यह देखो। हा-हा-हा-हा !" उस हंसी का और अन्त नहीं।

१४

अगले दिन एक बजे की गाड़ी से सतीश का जाना नहीं हुआ। पत्नी बोलीं, "सारी रात बकवाकर मारा है लड़के को। अब थोड़ा सोने दो।"

फिर पास आकर अनुनय के स्वर में बोलीं, "क्यों जी, भीतर ले जाकर एक बार मुलाकात नहीं करवा सकते?"

मैंने कहा, "सो कैसे होगा? जेलखाने का जनाना फाटक है।"

"इस लड़के के जाकर खड़े होने से ही तुम्हारी जनानियों का मान चला जाएगा? नहीं, सच कोई व्यवस्था करो। एक बार मुलाकात करा दो।"

मल्लिका की दीर्घ कहानी वह अभी तक जान नहीं पाई थीं। सुबह उठकर सिर्फ थोड़ा-सा आभासमात्र मैंने दे दिया था।

मैं बोला, "कोई लाभ नहीं। पहचान नहीं पाएगी।"

"यह कौन कह सकता है? एक बार चेष्टा करके देखो न? पागल हो, जो भी हो, है तो औरत ही।"

तीसरे पहर सतीश से बोला, "चलो, तुम्हें अपने राज्य में एक बार घुमा लाऊं।"

उसके मन में कोई विशेष उत्साह दिखाई न दिया। म्लान हँसी हँस-कर बोला, "चलिए।"

दो-चार वार्डों और दफ्तरों से घूमकर जनाने फाटक पर ? सांकल खटखटाई।

मानदा ने आकर दरवाजा खोलकर सलाम किया। भीतर पहुंचे। मतीश हिचकिचा रहा था। लगा, जैसे साइन वोर्ड की ओर देखकर उसके पैर नहीं बढ़ रहे।

मैं बोला, "खड़े क्यों हो ? आओ !"

औरतों का साधारण बैरक छोड़कर हम लोग सैल ब्लाक की ओर बढ़ गए। मानदा के दरवाजा खोलते ही देखा कि मल्लिका सामने के घास से ढके छोटे चबूतरे पर बैठी है। अपर्याप्त काले बाल पीठ पर फैले हैं। एक कैदी औरत उसकी परिचर्या में व्यस्त है। मतीश का हाथ पकड़कर धीरे-धीरे पास जाकर खड़ा हो गया। आवाज दी, "मल्लिका !"

उसने आंखें उठाकर देखा। उसकी वही सुन्दर आंखें।

"देखो तो कौन आया है !"

मतीश को उसके आगे कर दिया। मल्लिका की नजर उसके चेहरे पर पड़ी। वैसी ही शान्त, निस्तरंग, भावलेशहीन। कहीं भी क्षीणतम परिचय का आभास नहीं मिला।

उमड़ते आंसुओं को किसी तरह रोककर मतीश बोला, "मैं···मैं आया हूं मल्ली ! पहचान नहीं पा रहीं ?"

मल्लिका ने उत्तर नहीं दिया। एक वार देखकर ही मानो क्लान्त होकर आंखें झुका लीं।

"मल्ली !" मतीश ने प्रगाढ़ स्वर में पुकारा, "एक वार देखो··· मैं···"

झुकी पलकें धीरे-धीरे फिर उठीं और कुछ देर मतीश के चेहरे पर टिकी रहीं।

सांस रोके उसी तरफ देखते-देखते सहसा लगा, जैसे वे अर्थहीन निष्पलक नीले तारे थोड़े-से कांपे और बहुत दिनों का संचित विस्मृति का घना आवरण थोड़ा दूर हो गया।

मतीश की ओर देखने पर गौर किया कि उसका तमाम चेहरा जाने किस प्रकाश में चमक उठा है। वह और भी आगे बढ़कर आवेग-रुद्ध कण्ठ से बोला, "पहचाना ?"

जवाब नहीं मिला। धीरे-धीरे मल्लिका के भाषाहीन म्लान चेहरे

पर एक क्षीण वेदना की छाया घिर आई। गोया कि किसी दूरानुभूत यंत्रणा की प्रतिच्छवि हो। देखते-देखते उसीकी रेखाएं क्रमशः स्पष्ट गहरी हो गईं। वह सुन्दर मुंह भिचकर सिकुड़कर विकृत हो गया। लगा, जैसे कब-कब की अवरुद्ध अश्रुधारा मुक्ति चाहती है, पा नहीं रही।

यह दृश्य आखों से नहीं देखा जाता। मानदा चीख उठी, "इन्हें चले जाने के लिए कहिए, सर! देख नहीं रहे, लड़की को कितना कष्ट हो रहा है?"

सतीश को उस वक्त होश ही नहीं था। वह और भी पास आकर खड़ा हो गया। उसकी ठोड़ी ऊपर कर बोला, "क्या कष्ट हो रहा है मल्ली? बोलो, मुझे बताओ। मुझसे तो तुम कोई बात नहीं छिपाती थी?"

जैसे बांध तोड़कर बाढ़ का पानी दौड़ पड़ता है, उसी तरह अकस्मात् उन सुन्दर आंखों को चीरती आसुओं की बाढ़ उमड़ पड़ी। साथ ही मानो गले का बंधन भी कट गया। एक अस्फुट आर्तनाद कर एक झलक विद्युत्-शिखा की तरह मल्लिका दौड़कर सतीश के सीने पर आकर ठहर गई।

कैदी औरतें जेल का नियम-शासन भूलकर जाने कब आकर हमें घेरकर खड़ी हो गई थी। मैट्रन भी उनमें शामिल हो गई। नजर पड़ते ही चौंक गया, मानदा की आखों में आंसू!

□□

मानदा ने आकर दरवाजा खोलकर सलाम किया। भीतर पहुंचे। मतीश हिचकिचा रहा था। लगा, जैसे साइन बोर्ड की ओर देखकर उसके पैर नहीं बढ़ रहे।

मैं बोला, "खड़े क्यों हो ? आओ !"

औरतों का साधारण बैरक छोड़कर हम लोग सैल ब्लाक की ओर बढ़ गए। मानदा के दरवाजा खोलते ही देखा कि मल्लिका सामने के घास से ढके छोटे चबूतरे पर बैठी है। अपर्याप्त काले बाल पीठ पर फैले हैं। एक कैदी औरत उसकी परिचर्या में व्यस्त है। मतीश का हाथ पकड़कर धीरे-धीरे पास जाकर खड़ा हो गया। आवाज दी, "मल्लिका !"

उसने आंखें उठाकर देखा। उसकी वही सुन्दर आंखें।

"देखो तो कौन आया है !"

मतीश को उसके आगे कर दिया। मल्लिका की नजर उसके चेहरे पर पड़ी। वैसी ही शान्त, निस्तरंग, भावलेशहीन। कहीं भी क्षीणतम परिचय का आभास नहीं मिला।

उमड़ते आंसुओं को किसी तरह रोककर मतीश बोला, "मैं···मैं आया हूं मल्ली ! पहचान नहीं पा रहीं ?"

मल्लिका ने उत्तर नहीं दिया। एक बार देखकर ही मानो क्लान्त होकर आंखें झुका लीं।

"मल्ली !" मतीश ने प्रगाढ़ स्वर में पुकारा, "एक बार देखो··· मैं···"

झुकी पलकें धीरे-धीरे फिर उठीं और कुछ देर मतीश के चेहरे पर टिकी रहीं।

सांस रोके उसी तरफ देखते-देखते सहसा लगा, जैसे वे अर्थहीन निष्पलक नीले तारे थोड़े-से कांपे और बहुत दिनों का संचित विस्मृति का घना आवरण थोड़ा दूर हो गया।

मतीश की ओर देखने पर गौर किया कि उसका तमाम चेहरा जाने किस प्रकाश में चमक उठा है। वह और भी आगे बढ़कर आवेग-रुद्ध कण्ठ से बोला, "पहचाना ?"

जवाब नहीं मिला। धीरे-धीरे मल्लिका के भाषाहीन म्लान चेहरे

पर एक क्षीण वेदना की छाया घिर आई। गोया कि किसी दूरानुभूत यंत्रणा की प्रतिच्छवि हो। देखते-देखते उसीकी रेखाएं क्रमशः स्पष्ट गहरी हो गई। वह सुन्दर मुह भिचकर सिकुड़कर विकृत हो गया। लगा, जैसे कब-कब की अवरुद्ध अश्रुधारा मुक्ति चाहती है, पर नही रही।

वह दृश्य आंखों से नही देखा जाता। मानदा चीख उठी, "इन्हें चले जाने के लिए कहिए, सर! देख नही रहे, लड़की को कितना कष्ट हो रहा है?"

सतीश को उस वक्त होश ही नहीं था। वह और भी पास जाकर खड़ा हो गया। उसकी ठोड़ी ऊपर कर बोला, "क्या कष्ट हो रहा है मल्ली? बोलो, मुझे बताओ। मुझसे तो तुम कोई बात नही छिपाती थीं?"

जैसे बांध तोड़कर बाढ़ का पानी दौड़ पड़ता है, उसी तरह अकस्मात् उन सुन्दर आंखो को चीरती आंसुओं की बाढ़ उमड़ पड़ी। साथ ही मानो गले का बंधन भी कट गया। एक अस्फुट आर्तनाद कर एक झलक विद्युत्-शिखा की तरह मल्लिका दौड़कर सतीश के सीने पर आकर ठहर गई।

कैदी औरतें जेल का नियम-शासन भूलकर जाने कब आकर हमें घेरकर खड़ी हो गई थी। मैट्रन भी उनमें शामिल हो गई। नजर पड़ते ही चौंक गया, मानदा की आंखों में आंसू!

□□

बाघिन

दूरी की एक निजी महिमा है। पास रहते जिसकी ओर एक बार भी आंख उठाकर नही देखा, दूर जाते ही वही सुन्दर लगने लगता है। सामने बैठकर जिसने मेरे मन को किसी दिन भी गति प्रदान नही की, एक दिन देखने मे आया कि मेरी पहुंच के बाहर जाकर, वह जाने कब मेरे मन को जीत बैठा।

यह बात नई नही, भूतनाथ बाबू को देखकर अनुभव नये सिरे से की गई। जीवन का साढे तीन भाग वे जिन लोगो के बीच काटकर आए हैं, उनसे हमेशा-हमेशा के लिए विदा ले चुकने के बाद आज जब पीछे मुडकर देखने का अवसर मिला है, तो देखते हैं कि उन लोगो के शरीर पर नया रंग लग गया है। असलियत यह है कि वे लोग जैसे थे, वैसे ही हैं; बदला है इनकी आखो का रंग।

भूतनाथजी के साथ जिस दिन हठात् मुलाकात हुई थी, उसके बाद कई महीने बीत गए हैं। फातिमा-तोफाज्जल[1] की याद धुंधली पड गई है। ऐसे समय एक दिन फिर उनका आकस्मिक आविर्भाव !

भूतनाथ बाबू को ठीक मिजाज मे देखने के लिए अकेला होना जरूरी है। पहली बार यही हुआ था। इस बार ऐसा नही हुआ। मेरे निकट एक और सज्जन बैठे हुए थे। हम दोनों के ही परिचित, दुर्धर्ष बाघ-

---

१. व्यक्तियों के नाम। लेखक की पुस्तक 'लौह-कपाट' भाग चार देखिए।

शिकारी कालू चौधुरी। दलदल वाले इलाके के आदमी। किसी वक्त बहुत-से रॉयल बेंगाल टाइगरों की जान ली थी। उन्होंने भी कोई कसर नहीं छोड़ी। एकदम भाग्य के जोर पर ही बच गए, मगर अक्षत देह से नहीं; हाथ-पैरों में, पीठ पर दाहिनी ओर प्रखर नख और तीक्ष्ण दंशन के गौरवचिह्न आज तक अक्षय हैं। बैठक से संलग्न दक्षिणी बरामदे में बैठकर मैं वही सब इतिहास सुन रहा था।

आषाढ़ मास का एक अपराह्ण। आकाश काले बादलों से ढका है। थोड़ी देर के विराम के बाद बरसात फिर शुरू हो गई है। हरी घास से ढका प्रशस्त 'लॉन' है; उसके तीन तरफ कृष्णचूड़ा, बकुल और आम के पेड़ खड़े हैं, जिनके नीचे अकाल-सन्ध्या का धुंधलका छाया है। लगातार पानी पड़ने की आवाज आ रही है। नमीभरी हवा में भीगी मिट्टी की गंध है। इन सब बातों ने मिलकर शिकार-कहानी का अपना एक जो खास नशा है, उसे और भी गाढ़ा कर दिया था।

सिर्फ शिकार में नहीं, उसका वर्णन करने में भी कालू चौधुरी का जोड़ा मिलना मुश्किल है। मैं तो तन्मय हो गया था। हठात् भारी जूतों की आवाज और सिगरेट की तेज गंध से चौंक पड़ा।

कालू चौधुरी किसी समय छोटे-मोटे जमींदार थे। व्यसन के हिसाब से वे जैसे शिकार को निकलते थे, उसी तरह बीच-बीच में दो-चार दंगे-डकैतियां करना, औरतों को भगा ले जाना—ऐसे अभियान भी चलाते थे। आज भले ही दोनों का भीतरी सम्पर्क बदल गया है—एक पेन्शन ले रहे हैं, दूसरे शरणार्थी जीवन की असंख्य यातनाएं भोग रहे हैं—फिर भी उन्हें देखकर चौधुरी थोड़े सकुचा गए। भूतनाथ बाबू ने उनके संकोच को दूर करने की चेष्टा की। खुद ही एक कुर्सी खींचकर बड़े सहज और ऊंचे गले से बोले, "किसकी कहानी चल रही है? शिकार की? तो रुक क्यों गए? चालू रखो न।"

मैंने भी उनकी बात का समर्थन करते हुए समयोपयोगी उत्साह दिलाया। चौधुरी थोड़ा आसन बदलने के बाद पहले प्रसंग पर आ गए, "एक चीज बराबर देखी है। बाघ और बाघिन जोड़े से हों और किसी तरह आप उनमें से एक को खत्म कर दें, तो दूसरे के लिए आपको

ज्यादा दिन इंतजार नहीं करना पड़ता।"

मैं बोला, "सो कैसे ? दूसरे को तो और भी सावधान हो जाना चाहिए।"

"ठीक उलटा। वह तब प्रतिशोध लेने के लिए बेपरवाह हो जाता है। अपने प्राणों की तरफ नहीं देखता, अक्ल तक खो बैठता है। हिंसक प्राणी-मात्र ही रिवेन्जफुल, भयानक प्रतिहिंसापरायण होता है। इनमें सबसे ज्यादा बाघ।"

"नहीं।"

प्रतिवाद का स्वर इतना जोरदार था कि हम दोनों ही एकमात्र वक्ता के मुंह की ओर देखने लगे। भूतनाथ बाबू उसी तरह दृढ़ स्वर में बोले, "आदमी उसे भी पीछे छोड़ जाता है। खैर, आप सुनाइए।"

चौधुरी ने फिर शुरू किया, "जोड़े में से एक को मारने के बाद शिकारी को ही हर वक्त होशियार होकर रहना पड़ता है। यदि दूसरा उस वक्त कहीं आसपास ही छिपा रहता है और प्रायः यही होता है, तो वह मारने वाले को पहचानकर रखता है। उसका दांव पड़ जाए तो रक्षा नहीं। और यदि मारनेवाला निकट नहीं मिलता, तो उसका आक्रोश जा पहुंचता है उन लोगों के ऊपर, जो उसके अपने हैं—बहू, लड़का, लड़की अथवा संगी-साथी।"

यह बात मुझे आश्चर्यजनक लगी। मैं बोला, "मेरी तो यह धारणा थी कि बाघ की नजरों में सभी लोग समान शत्रु हैं। वह क्या आदमियों में भी चुनाव-चयन करता है?"

"करता क्यों नहीं ! दूसरे लोगों को वह बिलकुल ही न छूता हो, ऐसी बात नहीं। विशेषकर जो मैनईटर हैं, जो आदमी के खून का स्वाद पहले ही पा चुके हैं। फिर भी प्रायः ही देखा जाता है कि बाघ उसीसे बदला लेने की चेष्टा करता है, जो क्षति करता है। ऐसे आदमी के प्रति वह ऐसा हिंसक रुख लिए बैठ जाता है, जो अन्य समय यानी स्वाभाविक अवस्था में वह कभी नहीं लेता। जैसाकि उस बार हुआ…"

चौधुरी ने सुन्दरवन की अपनी खुद की ही एक शिकार-कहानी सुनाई। नरभक्षी बाघ नहीं था, कम से कम शुरू में तो नहीं था, मगर

भीषण दुर्दम्य ! कोई महीने-भर के भीतर पूरी सात गाय-भेड़ें उसके पेट में चली गई। उसका साहस इतना बढ़ गया कि दिन-दहाड़े जहां चाहे, हमला बोल दे। सात-आठ मील में फैला अच्छा-खासा इलाका था—उसके भय से सभी त्रस्त। खेतीबाड़ी, हाट-बाजार बंद होने की नौबत आ गई। खबर पाकर कालू चौधुरी अपने दो पुराने शागिर्दों को लेकर रवाना हुए। एक गांव में सुना कि इससे पहले भी तीन-चार शिकारी पन्द्रह-सोलह दिन लगातार इधर-उधर कोशिश कर गए हैं। पेड़ पर मचान बांधकर कई रातें काट गए हैं। बाघ के दर्शन भी नहीं होते। और सुबह होती नहीं कि खबर आ जाती है कि मचान से कुछ ही कदम दूर किसीके आंगन में से बाघ दुधारू गाय लेकर भाग गया। उसकी विशेषता यह है कि 'किले' के आसपास भी आकर नहीं फटकता। उस तरफ से वह बड़ा निर्लोभी है।

कालू चौधुरी ने कई गांवों में घूमकर छांट-छांटकर कई हट्टे-कट्टे मेमने इकट्ठे किए। उस वक्त उधर जल का बड़ा अभाव था। घने जंगल में एक-दो ताल-गड्ढे तलाश किए गए। उनके चारों तरफ बाघ महाराज के पदचिह्न देखने में आए। इसका अर्थ था कि उसे खाद्य कहीं भी मिले, पेय के लिए तो बार-बार यहीं आना पड़ेगा। एक सुविधाजनक स्थान पर मेषशावक को बांधकर जितनी दूर सम्भव था—अर्थात् राइफल की रेंज के अंतिम बिन्दु पर पेड़-पौधों की आड़ में मचान बनाया गया। इस तरह से कि बाहर से कुछ पता न चले। कांटों और डाल-पातों का एक-एक टुकड़ा तक बीनकर दूर फेंक दिया गया। एक-एक कर दो रातें बीत गईं मगर बाघ नहीं आया।

निवास पर लौटकर खाना-पीना खत्म कर और यह तय कर कि अगली रात और देखेंगे, चौधुरी साहब विश्राम कर रहे थे। उठे ही थे कि मर्मान्तक संवाद मिला। इस बार कोई गाय-भेड़-बकरी नहीं, इसी गांव का एक बाईस-तेईस वर्ष का दुःसाहसी जवान लड़का अभी-अभी बाघ का शिकार बना है। जंगल में लकड़ी काटने गया था। और अकेला नहीं, विधिवत् दल बनाकर। साथी लोग थे अपेक्षाकृत खुली जगह में, वह थोड़े घने जंगल में घुस गया था। किसीको विशेष कुछ दिखाई नहीं

पड़ा। एकाएक उन लोगों के कानों में पड़ी उस लड़के की चीख और साथ ही साथ बाघ की गर्जन। सब हा-हुल्लाकर दौड़कर पहुंचे तो देखा कि एक आधे कटे पेड़ के धड़ से थोड़ी दूर वह लड़का पेट के बल पड़ा हुआ है। पहले पुकारा, आवाजें दीं, फिर हिलाकर देखा—सब खत्म।

कालू चौधुरी पहुंचे, उस वक्त भी लड़के के कंधे के पास से बुरी तरह खून बह रहा था। पीछे की तरफ सिर्फ एक मांस का लोथड़ा बचा था। हड्डियां तक टूट गई थीं। अर्थात् आघात और मृत्यु के बीच व्यवधान सिर्फ चन्द सेकेण्डों का था।

शिकारी की अनुभवी नजरों से चौधुरी ने बहुत देर तक लाश और उसके आसपास की जगह की परीक्षा की। जांघ के पीछे एक और घाव नजर पड़ा। दांत का था। बाघ अमित शक्तिशाली है, इसमें सन्देह नहीं था। ऊपर से आदमी के खून का कुछ स्वाद भी उसकी रसना को मिल गया था। फिर वह देह को फेंक क्यों गया? चारों तरफ और अच्छी तरह देखना जरूरी है। वे आगे बढ़ने को थे कि हठात् आदमियों के पीछे से एक आर्त्त तीक्ष्ण नारी-कण्ठ ने बाधा डाल दी। सबको ढकेलती आंधी की तरह दौड़ती आकर उस मृत देह पर जो औरत गिर पड़ी, उसकी उम्र शायद सोलह भी पूरी नहीं थी। काला रंग, भरपूर स्वास्थ्य, बड़ी-बड़ी आंखें। कुछ ही महीने पहले उन दोनों की शादी हुई थी। घर से काफी दूर पानी भरने गई थी। लौटते वक्त ही खबर मिली। कांख में दबी कलसी फेंककर मैदान-जंगल पार करती दौड़ी चली आई है। साथ की औरतों ने पकड़ रखने की चेष्टा की थी, नहीं रोक पाईं। स्वामी की पीठ पर पछाड़ खाकर अपने स्वल्पस्थायी विवाहित जीवन की स्मृतिभरी कितनी ही छोटी-छोटी बातें बखानती रोती जा रही थी। सिर से आंचल हट गया, खुली केशराशि पीठ पर बिखर गई। मुंह पर, कपाल पर, आंखों के कोनों में अश्रुधारा के साथ रक्त मिल गया। लगा, जैसे उस रोने का अन्त नहीं। उस शोक की कोई तुलना नहीं। पूरे गांव के इतने सारे स्त्री-पुरुष अपना सारा कलरव, सारी उत्तेजना भूलकर स्तब्ध पत्थर बन गए।

कालू चौधुरी भी कुछ देर किंकर्तव्यविमूढ़ हुए खड़े रहे।

जंगल की तरफ बढ़ गए। सूखे पत्तों पर थोड़ा-सा रक्त मिला। एक जगह नहीं, बीच-बीच में रिक्त स्थान छोड़कर रक्त की एक लाइन चली गई है। इसका अर्थ था कि आततायी अक्षत देह लेकर नहीं जा पाया। तभी याद आया कि लड़के के हाथ में जो कुल्हाड़ी थी, वह कहां है ? वह गायब है। भीड़ के भीतर एक सुरसुराहट मच गई। इस गहन शोकावह दृश्य ने इन सारे लोगों को सुन्न कर दिया था। उनके सूखे चेहरे एकाएक चमक उठे। सभीके मुंह से एक स्वतःस्फूर्त उच्छ्वास निकलने लगी। शाबास जवान ! जान गंवा दी, मगर जो जान लेने आया था, उसे भी घायल किए बिना नहीं छोड़ा। कलाइयों का जोर देखो ! कुल्हाड़ी ऐसी जगह चुनकर मारी है कि इतने बड़े बाघ की भी सामर्थ्य नहीं कि निकाल फेंके। बेटे को कंधे पर लगाए ही भागना पड़ा।

ये सुन्दरवन के लोग हैं। बाघ, सांप, मगर, जंगली सुअर इनके नित्य संगी हैं। इनके अलावा, बीच-बीच में आती है बाढ़ और महामारी। उठते-बैठते मृत्यु से आमना-सामना होता है। यम से लड़ाई कर जिन्दा रहना पड़ता है। उस लड़ाई की उत्तेजना प्रियजन की विरह-वेदना को लेकर पड़े रहने नहीं देती। इन लोगों ने भी जब यह देखा कि यह मृत्यु कितनी ही करुण क्यों न हो, कायर की मृत्यु नहीं, तो क्षणभर में अपने को तान-खींचकर सब चंगे हो गए।

कई युवकों ने आगे बढ़कर शिकारी को घेर लिया। कुल्हाड़ी लिए बाघ बहुत दूर नहीं जा सकता। अवश्य ही वह जख्म के कारण पस्त हो गया होगा। सभी मिलकर धावा बोल दें तो अभी पकड़ में आ जाएगा। यह सुयोग छोड़ना ठीक नहीं होगा। चौधुरी ने उन लोगों को मना किया। उन्हें बहुत अनुभव है। वे जानते हैं कि आहत बाघ क्या वस्तु है। पकड़ तो शायद लेंगे, अन्त में मारना भी सम्भव हो जाए, मगर प्राण देने से पहले वह एक-दो जान लिए बिना नहीं छोड़ेगा। वे मन ही मन कुछ और बात सोच रहे थे, मगर व्यक्त करना मुश्किल था। बता भी देते, मगर ये लोग विशेषकर आत्मीयजन, राजी नहीं होते। फिर भी वे इस उत्तेजना का लाभ लेकर प्रस्ताव रख बैठे।

भीड़ से थोड़ा हटकर एक पेड़ के नीचे लड़के का बाप बैठा हुआ

था। उसके मुंह से अब तक एक अस्फुट शब्द तक नहीं सुना गया। जाने कैसा सुन्न-सा हो गया था। उसीके पास जाकर चौधुरी खड़े हो गए। बोले, "यदि इस देह को एक रात जैसे है, वैसे ही रहने दें, तो मैं एक आखिरी चेष्टा और कर लूं।" बाप ने विस्मय और वेदना से मुंह उठाकर देखा, कोई उत्तर नहीं दिया। इधर-उधर ताककर पड़ोसियों की तरफ देखकर कहा, "तुम लोग अभी तक बैठे हो? और वक्त नहीं, खयाल है?"

अरे हां! आसपास बहुत-से लोग सतर्क हो गए। क्रियाकर्म का आयोजन इसी वक्त शुरू करना चाहिए। श्मशान एकदम पास में नहीं। सामने अंधेरी रात है। कई प्रौढ़ और युवक उठ पड़े। एक वयस्क व्यक्ति चौधुरी को एक ओर बुलाकर दबे गले से बोला, "यह नहीं होगा बाबूजी! लाश को बासी नहीं करते। दोष होता है। यह काम हम लोग नहीं कर सकेंगे।"

बहुतों ने चलने के लिए कदम बढ़ा दिए। औरतों में से कुछेक बहू को साथ ले जाने के लिए आगे बढ़ीं; उसी वक्त कानों में पहुंची उसकी दृढ़ एवं स्पष्ट आवाज, "ठहरो!"

सभी ठिठककर खड़े हो गए।

कालू चौधुरी ने भी अवाक् होकर देखा कि लड़की उठ खड़ी हुई है, उसकी आंखों में आंसू नहीं हैं, पूरे चेहरे पर एक स्थिर संकल्प की कठोरता है। वह धीरे-धीरे उन्हींके निकट आकर तर्जनी उठाकर बोली, "उन्हें इसी जगह छोड़ दें तो तुम इसी रात बाघ को मार सकोगे?"

उस जरा-सी लड़की के मुंह से इस तरह के प्रश्न के लिए चौधुरी प्रस्तुत नहीं थे। छूटते ही कोई उत्तर नहीं दे सके। मगर अगले ही क्षण अपने विस्मय-अनिश्चय के भाव को संभालकर बोले, "मार सकूंगा या नहीं, यह कैसे कहा जा सकता है? जहां तक होगा, चेष्टा करूंगा।"

"चेष्टा?" सुनकर वह लड़की चौंक गई। लगा, जैसे उनके चेहरे पर किसीने कीचड़ फेंक दिया है। वह बोली, "चेष्टा गई भाड़ में! चेष्टा ही की होती तो क्या आज मेरा···"

कहते-कहते वह लड़की उच्छ्वसित रुदन के साथ उनके पैरों के पास

ही बिखर गई। उसी तरफ देखते चौधुरी स्तब्ध खड़े रहे। क्या कहें, क्या बात कहकर उसे सान्त्वना दें, सोच नहीं पाए।

वह सहसा पुनः इस तरह उठकर खड़ी हो गई, जैसे बिजली ने छू लिया हो। आंखों से आग छिटकाती बोली, "तुम किस बात के शिकारी हो? जब एक बाघ नहीं मार सकते, तो इतनी बंदूकों का क्या करते हो?"

उसके गुरुजन आकर उसे एक ओर ले गए। किसीने मृदु स्वर में तिरस्कार करते हुए कहा, "छिः-छिः, कहीं इस तरह कहते हैं!"

चौधुरी मानो सोकर उठे। बोले, "ठीक ही कहती है, इसका कोई दोष नहीं। तुम लोगों से मैं सिर्फ एक ही भीख मांगता हूं। आज मुझे आखिरी मौका दो। सारी रात रखने की जरूरत नहीं, सुबह चार बजे तक। उसके बाद आकर ले जाना।"

फिर कुछ कदम आगे बढ़कर उस लड़की के सिर पर हाथ रखकर बोले, "घर जाओ। वचन दिया, इस बाघ को मारे बिना मैं घर नहीं लौटूंगा।"

लड़की ने आंखें उठाकर देखा। चौधुरी ने देखा कि उसकी आंखों से गहन कृतज्ञता उमड़ी पड़ रही है। जाने क्या कहने वाली थी, बोली नहीं, शायद शर्म आ गई। फौरन ही आंखें झुका लीं। दूसरे ही क्षण सभीकी ओर देखकर बहुत कुछ, गोया कि निर्देश के स्वर में बोली, "तुम लोग चले जाओ।" कहकर और रुकी नहीं। द्रुत गति से चल पड़ी। बाकी लोगों ने भी मंत्रचालितों की तरह उसका अनुसरण किया।

कालू चौधुरी का अनुमान था कि बाघ यहां विश्राम कर रहा था, लड़के पर आक्रमण करने की उसकी शायद कोई नीयत नहीं थी। वही हठात् बाघ देखकर कुल्हाड़ी चला बैठा होगा। बिगड़कर उछलकर बाघ ने उसका कंधा तोड़ दिया और लड़के का मरण-चीत्कार एवं लोगों का शोरगुल सुनकर वह लाश लिए बिना ही भाग गया। कुल्हाड़ी उसके शरीर में कहीं बिंधी हुई है। बाद में वह निकल भी गई हो, मगर इस आघात की जलन वह नहीं भूल पाएगा। लोगों के चले जाने के बाद वह बदला लेने के लिए निश्चय ही आएगा। इसके अलावा उसकी रसना

भले ही क्षण-भर के लिए सही, आदमी का गर्म खून स्पर्श कर चुकी है। वह आकर्षण भी कम नहीं। इससे भी प्रबलतर आकर्षण है प्रतिहिंसा। वह आएगा ही, इस विषय में चौधुरी प्रायः निश्चिन्त थे।

मचान बांधने को लेकर मुश्किल हुई। बाघ को यदि ऐसा आभास हो जाए कि आस-पास कहीं शिकारी की बन्दूक घात लगाए तैयार है, तो उसकी प्रतिहिंसा की ताड़ना कितनी ही तेज क्यों न हो, उसको आत्म-रक्षा की स्वाभाविक प्रवृत्ति शायद उसे बाधा पहुंचाएगी। अतएव एक कैमोफ्लेज जरूरी है—शिकार की आंखों में धूल झोंकने के लिए पेड़-पौधों का थोड़ा-सा अन्तराल! समय बहुत थोड़ा था। उसीमें किसी तरह एक मचान खड़ा किया गया। बहुत-सी गलतियां रह गईं, मगर उस वक्त और कोई चारा नहीं था।

चौधुरी रात के लायक सामान्य-सा कुछ खा-पीकर एक होशियार सहायक और राइफल, टार्च आदि सरंजाम लेकर शाम के बाद से ही मचान पर जाकर बैठ गए। समय कटना ही नहीं चाहता। लगा, जैसे क्षण क्रमशः भारी हो रहे हैं, ढकेलकर हटाए नहीं जा रहे।

मचान पर बैठकर रात बिताना कालू चौधुरी के जीवन में यह कोई पहली घटना नहीं थी। सुन्दर वन के मच्छरों का परिचय वे पहले भी प्राप्त कर चुके हैं। चीटियों का दल-बद्ध दंशन क्या चीज है, इसका स्वाद भी उन्हें मिला हुआ है। इनमें से कोई भी बात उन्हें विचलित नहीं करती। आज भी नहीं कर रही। शिकार को वे शिकारी की नजर से ही देखते आए हैं। आ गया तो ठीक, नहीं आया तो वे सारी रात की व्यर्थ प्रतीक्षा से क्लान्त या परेशान नहीं होते। इस बात को उन्होंने बड़े ही सहज भाव से लिया है, मगर आज वे अधीर, अस्थिर, असहिष्णु हैं। इस आश्चर्य-जनक लड़की ने उन्हें चंचल बना दिया है। कभी उसकी वे चमकती आंखें, कभी उसका वह अश्रुसिक्त करुण चेहरा उनकी आंखों में तैरने लग जाता। फिर खुद उसे वचन देकर आए हैं, उसके स्वामीहन्ता को खत्म किए बिना उनकी रहा से छुट्टी नहीं। और अब उनके हाथ में मात्र कुछ घण्टों का वक्त है। यदि सफलता न मिली, तो किस मुंह से उसके आगे जाकर खड़े होंगे?

मन निश्चय करके ही उन्होंने शायद यह प्रश्न किया था। हम दोनों को ही थोड़ा आश्चर्य हुआ।

भूतनाथ इस बात को लक्ष्य कर बोले, "आप लोग जो सोच रहे हैं, सो नहीं। कालू बाबू की विद्या मैं नहीं जानता। जंगल की बाघिन का भी मुझ कुछ पता नहीं। घरों में जो एक-दो देखने को मिली हैं, उन्हींसे मैंने अन्दाज लगाया था।"

बात और भी रहस्यमय हो उठी। उस विषय में और कोई प्रश्न करने से पहले ही कालू चौधुरी ने वर्षा-विरत आकाश की ओर देखकर उठने की इच्छा व्यक्त की। बहुत समय तक अदृश्य रहने के बाद उन्होंने जिस कारण से मुझसे मुलाकात करने की प्रार्थना की थी, उसके साथ भी शिकार का सम्बन्ध था। वे इतनी सारी बन्दूकों के लाइसेन्सों को लेकर थोड़ी मुश्किल में पड़ गए थे। मेरी सहायता से अधिकारियों का अनुदार मनोभाव दूर हो जाए, इस आशा को लेकर ही उनका आना हुआ था। मैंने उन्हें आश्वासन दिया कि मेरी जितनी सामर्थ्य है, करूंगा। वे धन्यवाद देकर चले गए।

चौधुरी को दरवाजे तक पहुंचाकर लौटकर मेरे भूतनाथ बाबू की तरफ देखते ही वे बोले, "क्या देख रहे हैं? आज किसी मतलब से नहीं आया। यों ही चला आया।"

'गाड़ी पकड़ने की तो जल्दी नहीं?"

"नहीं, रात को लड़की के घर रुकना पड़ेगा। उस दिन नहीं रुका, इसलिए बुरी तरह नाराज है।"

"तभी भागकर आना पड़ा?"

"क्या करूं, बताइए? इसके अलावा, आपके साथ बैठकर पुरा दिनों को उलट-पुलटकर देखना—यह लोभ भी कोई कम है?" कहक वे हंस पड़े।

मैं बोला, "तो शुरू कीजिए। मुखबंध, यानी इण्ट्रोडक्शन तो हो गया।"

"किसका?"

"क्यों, बाघिन?···जंगल की नहीं, घर की।"

"ओ, मगर वह शिकार-कहानी तो नहीं है। उसमें और जो भी हो, मिल नहीं पाएंगे।"

"मिल से भी गहरी कोई चीज पा लूंगा। कानू चौधुरी से जो प्रश्न आपने किया था, उससे लगता है कि उन्होंने जिस बाघिन की कहानी सुनाई है और आपने जिन बाघिनों को देखा है, इन दोनों में निश्चय ही कोई आधारभूत समानता है।"

"मेरा तो यही विश्वास है। आप शायद नहीं मानें। साहित्यिक व्यक्ति हैं। आपकी आंखों में, और सिर्फ आपकी ही क्यों, दुनिया में बहुत-से लोगों की नजरों में पुरुष की तुलना में स्त्री जाति कहीं अधिक कोमल, स्नेह-करुणा-ममता से बड़ी आसानी से पिघल जाने वाली, और जाने क्या-क्या है। उसका एक दूसरा रूप आप लोगों ने शायद नहीं देखा। कलेजे में जब प्रतिहिंसा की आग जलती है, तब ये लोग जो कर सकती हैं या कर बैठती हैं, उन्हें देखकर कादिरमुल्ला[1] भी हार मान जाएंगे।"

अर्धविस्मृति का धूम-धूसर आवरण भेदकर एक अस्पष्ट नारी-मूर्ति मेरी आंखों में तैरने लगी। मैं बोला, "इस जाति की एक सदस्या को मैं भी जानता हूं, मगर बाघिन की अपेक्षा नागिन के साथ उसकी समानता ज्यादा है।"

"आप काशिम फकीर की रूपवती बीबी कुटी बीबी की बात कर रहे हैं? मगर कादिर की तरह वह भी अन्त में रक्षा नहीं कर पाई।"

मेरी जिज्ञासु दृष्टि की ओर देखकर उन्होंने बात को और भी स्पष्ट करने की चेष्टा की, "कादिर ने फिर भी अन्ततः अपने को सम्हालना चाहा था, फांसी का फंदा गले में पहनकर वह अपने बहनोई से चरम प्रतिशोध ले गया। कुटी बीबी को तो वह सान्त्वना भी नहीं। एक दिन जिससे 'बदला लूंगी' कहकर वह बाईस मील दौड़कर थाने के बरा-मदे में जाकर बेहोश होकर पड़ गई थी, दूसरे दिन उसी का 'गला छुड़ाने' के लिए वह वकील के हाथों सब कुछ सौंप देने से भी नहीं डरी।"

"लगता है, शायद वह भी एक तरह का बदला लेना है, सूद से मूल

---

१. 'लौह-कपाट' भाग चार देखिए।

का बदला ।"

"यदि ऐसी बात है, तो उसकी नागिन वाली केंचुली खुल गई, उतर गई । फिर तो आप लोगों की वही कविता वाली 'चिरन्तन नारी' ! मगर मैं जिसकी बात कह रहा था, वह तो एकदम जात-बाघिन थी। उसने जो प्रतिशोध लिया, वह विशुद्ध और पूरी जैव प्रतिहिंसा थी ।"

कहते-कहते भूतनाथ बाबू की आंखें धीरे-धीरे बंद हो गई और फिर एकाएक प्रबल वेग से धारा-वर्षण शुरू हो गया । मैंने अपनी कुर्सी थोड़ी और पास सरका ली । वर्षण मुखर अंधकार की ओर थोड़ी देर देखते रहने के बाद वे धीमे गले से बोले, "उसका नाम था···छोड़ो, असली नाम नहीं भी बताऊं । इससे अच्छा, आप एक नया नाम दीजिए ।"

मैं बोला, "बनानी ।"

"बड़ा आधुनिक नहीं लगता ?"

"लगा करे, उसमें थोड़ा रहस्य का अंधकार है । आप शुरू कीजिए ।"

"अच्छा ।"

भूतनाथ बाबू की प्रायः हर कहानी के शुरू में एक प्रारम्भिक प्रश्न हुआ करता है । ठीक प्रश्न नहीं, कह सकते हैं, कोई 'एसम्प्शन' या कोई एक बात मान लेना, जिसकी शक्ल प्रश्न की होती है ।

"बचपन में भूगोल निश्चय ही पढ़ा होगा ?"

मैं बोला, "पढ़ा था, यानी पढ़ना पड़ा था। परीक्षा ले बैठे तो मुश्किल में पड़ जाऊंगा । स्कूल के दिनों में यह भूगोल बड़ा तंग करता था ।"

" खैर, बंगला देश का मैप तो थोड़ा-बहुत दिमाग में होगा ही । पूरे बंगाल की बात कह रहा हूं, आप लोग जिसे अनडिवाइडेड बंगाल कहते हैं । यह बात मुझे कतई सहन नहीं होती । इसमें एक राजनैतिक मतलब छिपा है, अंग्रेजों की इस 'डिवाइड' नामक कीर्ति को आंखों में उंगली डालकर दिखा देना ! नहीं तो अंश से पूरी चीज का परिचय, यह कौन-सा देशी नियम है ?

"जो भी हो, उस पुराने बंगाल प्रेसिडेन्सी के मैप को याद करने की चेष्टा कीजिए। बाईं ओर से उतरती है भागीरथी, और दाईं ओर से पद्मा-मेघना। दोनों धाराएं जाकर गिरती हैं बंगाल की खाड़ी में। बीच में एक वृहत् ब-द्वीप (डेल्टा) है। हमारे भूगोल के मास्टर साहब कहते, 'बद् द्वीप। आदमी लोग सब बद हैं। तुम लोगों को देखकर ही पता चलता है।' वे मेदिनीपुर के आदमी थे। इस 'ब' के बीच नहीं आते। हम सभी 'ब' हैं। रसिकता के साथ कहते, फिर भी यह बात हम लोगों को चुभती। हम लोग सामने कुछ नहीं कहते, आड़ में कहते, लोटा मास्टर।

"इस त्रिभुज के तले की ओर बहुत-सी पतली-पतली हरी रेखाएं देखोगे। सब जाकर वे बे ऑफ बंगाल में मिल गई हैं। जैसे-जैसे दक्षिण में जाएंगे, उतनी ही ज्यादा मिलेंगी। ये सब बड़ी-बड़ी नदियां हैं। कोई-कोई तो पद्मा-मेघना से भी बड़ी हैं। इस पार खड़े होने पर दूसरी पार दिखाई नहीं देती। मगर मैप या भूगोल में कोई नाम नहीं। आसपास जो लोग रहते हैं, वे कोई न कोई नाम लेकर बोलते हैं। गांववालों के दिए गंवारू नाम। आपको पसन्द नहीं आएंगे। इन्हींमें से एक अनाम नदी के किनारे सुपारी, नारियल, मदार और डाकाई अरेंडी के घने जंगल की आड़ में कुछेक टीन के छप्परों में एक छोटा परिवार रहता है। कुल चार प्राणी—अधेड़ उम्र का बाप, जवान लड़का, लड़के की मां और बहू। बहू हुई आपकी बनानी।"

मैं हंसकर बोला, "मेरी बनानी कैसे हुई ?"

"वाह, नामकरण में कुछ प्राप्ति तो होती ही है। और फिर ऐसा सुन्दर नाम! बाप-बेटे दोनों के नाम भी आप रखेंगे ?"

"नहीं, उनमें मेरी कोई रुचि नहीं।"

"समझा! तो मैं ही रखता हूं। मान लीजिए, गोपी और सुबल। सुखी परिवार ही मानिए। माली हालत ठीक है। नदी के कछार में कई बीघे धान की खेती, सोना उगता है। सालभर का खर्च मजे से चल जाता है। ऊपर से सुपाड़ी-बागान, उस इलाके का जो प्रधान धंधा है। इसके अलावा गोपी बर्मन का कुछ कारोबार भी था—*निर्यात-व्यापार*। कभी सुपाड़ी-नारियल, कभी धान-चावल भरकर खास लोगों को

लेकर बड़ी-बड़ी नावों (जिन्हें वे लोग कहते हैं घासि नौका) में पाल लगाए शहर की ओर चला जाता। लौटने में दो-तीन महीने लग जाते हैं, कभी-कभी इससे भी ज्यादा।

" यह निर्यात-व्यापार असल में शिकारी का 'केमोफ्लेज' था, जिसकी आड़ में बैठकर कालू चौधुरी बाघ की आंखों में धूल झोंकता है। गोपी की बहादुरी और भी ज्यादा है। वह झोंकता था पुलिस की आंखों में। असली कारोबार था उसके पीछे, शिकारी के मचान की तरह अंधकार में ढका। वह भी एक प्रकार का निर्यात है। अंतर सिर्फ यही है कि माल के रवाना होने की खबर मिल जाती थी, वह माल जाकर कहां पहुंचा, इसका कोई अता-पता नहीं मिलता। इसके अलावा, कारोबारी आदमी हर समय नेपथ्य में रहते। मान लीजिए, नाव सजाकर बाजे, बजा-कर वर शादी करने जा रहा है। साथ में कीमती चीज-वस्त्र हैं। इसके बाद क्या हुआ, कोई पता नहीं। शरीर को गहनों से लादे, पांच बक्से दहेज के लिए दुलहन ससुराल जा रही है। शुभ लग्न में नाव चल पड़ी, मगर जाकर घाट पर नहीं लगी। जमींदार के नायब ने सालभर के लगान के रुपये भरकर नाव सदर के रास्ते छोड़ दी। साथ में लाठी-सोटा, बन्दूक, पायक-बरकंदाज सब हैं। और ये सब सामानसहित कहां, किस तरह अदृश्य हो गए, इसकी खबर इस पार, उस पार कहीं नहीं पहुंची।

" पुलिस को पता था कि इन सब घटनाओं के पीछे है एक नाव, जिसकी तीर जैसी गति है, जिसमें कुछेक लोग हैं और उसे जो चलाता है, उसका नाम है गोपी बर्मन। मगर रिवर पुलिस की लांच उसे पकड़ नहीं पाती। पीछा करते ही वह आंखों के सामने धुएं की तरह विलीन हो जाती है। लांच के चालक और खलासियों का विश्वास है कि यह आदमी कोई बहुत बड़ा ओझा है, अदृश्य होने का मंत्र जानता है। जल-पुलिस के सिपाही-जमादारों, यहां तक कि कई दरोगाओं को भी यही बात कहते सुना है। लगता है, भूतशुद्धि, प्रेतशुद्धि, गोया कि हर तरह की विद्या वह जानता है। नहीं बन्दूक की गोली कैसे चूक जाती है? सौ गज दूर से पक्का निशाना लेकर राइफल छोड़कर देख लिया, लगती

नहीं।

" एक बार एक कटहल की नाव माल बेचकर देश लौट रही थी। घोपाडांगा की छोटी नदी पार कर बड़ी नदी में पहुंची ही थी कि न जाने कहा से आकर एक छिप (तेज गति की नाव) ने बाज की तरह झपट्टा मारा।"

मेरे चेहरे पर विस्मय फूट पड़ा, "कटहल की नाव! उसमें भला कितने रुपये होंगे?"

"सो कम भी कितने? तीन-चार हजार तो थे ही।"

"क्या कहते हैं! कटहल बेचकर इतने रुपये?"

"तो फिर आपने वे सब कटहल देखे नहीं, उनका नाम है भाटी कटहल। एक-एक का वजन होता है आधा मन, तीस सेर। एक-एक फांक पक्के एक पाव, पांच छटांक की होती है। लाहा नहीं, यानी रस निकालकर दूध के साथ मिलाकर पीने की चीज नहीं। कड़ा गूदा, कच-कच कर चबाकर खाते हैं। ढाका, फरीदपुर, यशोहर, खुलना में भाटी कटहल की बड़ी पूछ है। उसके आगे रसगुल्ला क्या चीज! देसी कटहल खत्म होने के बाद, अर्थात् सावन-भादों के महीने में हाट-हाट पर बड़ी-बड़ी नावों की भीड़ लग जाती है। छोटी-सी उस डकी जगह को छोड़कर बाकी जगह पर कटहल का एक-एक पहाड़ नजर आता है। गृहस्थों के हाथों में जूट की बिक्री से प्राप्त चमकते नोट होते हैं। इधर शरत्कालीन धान भी घरों में पहुंच गया है। दो-चार महीनों के लिए खाने की चिन्ता नहीं। बस, और क्या चाहिए! हाट से लौटते हुए आदमी के कंधे पर एक राम कटहल होता है, हाथ में सेर-डेढ़ सेर की इलिश (मछली) होती है।...थाने-थाने में पुलिस का काम बढ़ जाता है।"

"क्यों? इसके भीतर पुलिस कहा से आ गई?"

"कोई यों ही थोड़े ही आ जाती है। इस कटहल और माछ के आकर्षण में आना पड़ता है। शुरू में मान की लड़ाई होती है, देखते देखते वही असली लड़ाई में बदल जाती है।"

"मान की लड़ाई कैसी?"

"कैसी? मान लीजिए, मालपाड़ा के मुन्शीजी इलिश

मछुआ कहता है तीन रुपये; वे सवा रुपये से पौने दो रुपये तक पहुंचे हैं कि इसी वक्त दक्षिणपाड़ा के चौधुरी साहब उधर से बोल पड़े—दो रुपये में दोगे ? बस, हो गई शुरुआत।

" 'पैसे की गरमी दिखा रहे हो मियां साहब ?'

" 'ऐसा सोचते हो, तो यही सही। पैसा होता है, तो उसकी गरमी भी होती है।'

" 'अच्छा !'

" दोनों तरफ लोग इकट्ठे हो गए। जबानी बातों से हाथापाई, फिर लाठी, भाला, बल्लम। आध घण्टे के भीतर पांच जख्म, एक खून।"

मैं बोला, "यह सब तो मालूम ही नहीं था।"

"कैसे जानेंगे ? हम लोगों की तरह गांवों में तो रहना नहीं पड़ता। डिस्ट्रिक्ट टाउन के बाहर तो किसी दिन पैर रखा नहीं।"

"सो तो नहीं रखा, मगर इन सब चीजों को लेकर तो मुझे भी घर चलाना पड़ा है।"

" आपको मिली है तैयार फसल। उसके पीछे जो जटिल क्रिया-कलाप है—बीज संग्रह करने से लेकर फसल घर लाने तक—उसकी तो हवा तक आपके शरीर से नहीं लगी। वह सब तो इस पुलिस के सिर पर है। छोड़ो। अब आगे सुनिए।

" छिपवाले लोग जब उस बड़ी नाव पर लपककर पहुंच गए, तो व्यापारी लाठी, भाले आदि लेकर तनकर खड़े हो गए। बड़ी-बड़ी नदियों में होकर देश-देशांतर घूमना पड़ता है, इसलिए यह सारा सरंजाम रखना पड़ता है। मगर डकैत लोग दल में भारी थे, उनके हथियार भी मारात्मक थे। नतीजा यह कि इन लोगों में से एक तो साथ ही साथ खत्म और दो-तीन जख्मी। बाकी जो थे, नदी में कूद पड़े। उन्हींमें से एक व्यक्ति किसी तरह तैरकर पार पर पहुंच गया। गोपी बर्मन के आस-पास ही उसका घर था। रंग-रोगन चढ़ा होने के बावजूद गले की आवाज सुनकर उसे पहचान लिया था। पूरे एक दिन का रास्ता चलकर किसी तरह थाने में पहुंचकर खबर दी।

" गोपी का पता नहीं चल रहा था। पुलिस ताक लगाए बैठी थी। कोई पन्द्रह दिन बाद घर लौटते ही उसे पकड़कर हाजत में रख दिया। माल-मत्र, रुपया-पैसा कुछ नहीं मिला। जिस आदमी ने खबर दी थी, वह भी कुछ दिन बाद मुकर गया। गांववालों ने डरा दिया—गोपी के विरुद्ध 'साक्षी दी' तो 'बाण मार देंगे'। बाण मारना किसे कहते हैं, जानते हैं ?"

"सुना तो है, पर क्या होता है, ठीक मालूम नहीं।"

" एक तरह का मंतर है, जिसे लक्ष्य कर यह कहा जाता है, उसकी और रक्षा नहीं, तीन रात-दिन पूरे होने से पहले ही उसका सारा कुनबा मुंह से खून निकलने के कारण खत्म हो जाएगा।'''अतः फरियादी और खोजने पर भी नहीं मिला।

" साक्षी नहीं, माल नहीं, मामला चलेगा किसपर ? असामी को हाजत में ज्यादा अटकाए नहीं रखा जा सकता। रिवर पुलिस के इंस्पेक्टर कालीप्रसाद मुखर्जी स्वयं ही जांच कर रहे थे। अभी-अभी पदोन्नति हुई थी। आशा कर रहे थे, गोपी बर्मन को फांस लिया तो रातोंरात कन-फरमेशन हो जाएगा। और यह आशा मन में ही नहीं रखी, एक साक्षी हाथ में आते ही इष्टमित्रों के बीच बिखेरनी शुरू कर दी। इसीलिए आप समझ रहे होंगे, उन्हें बड़ी मुश्किल का सामना करना पड़ा। हाकिम के हाथ- ैर पकड़कर किसी तरह और चौदह दिन जमानत बंद रखने की व्यवस्था की। फिर उसी रात लाच लेकर असामी के गांव की ओर रवाना हुए।

" पहले कई दिन तो तरह-तरह के लोगों से खोज-खबर लेने की चेष्टा करते रहे। देखने में आया कि आस-पास के लोगों में से बर्मनों से कोई खास मुहब्बत नहीं था। मगर असल बात पर सभीके मुंह बंद। तंत्र-मंत्र के आगे पुलिस की क्या गिनती ? इंटरोगेशन के नाम पर कालीप्रसाद ने छांट-छांटकर किसी-किसी पर दो-चार जो डोज मारे, उन्हें हलका नहीं कहा जा सकता। मगर हजार भी हों तो क्या, बाण मारने की तुलना में वे कुछ भी नहीं। और कहीं कुछ हाथ नहीं पड़ा तो अन्त में मुकुल को जा पकड़ा। वह तो जैसे दैत्यकुल में प्रह्लाद! बाप की धारा से बिलकुल अलग। बचपन से ही जड़भरत की तरह! गांव में तुलसी-

मछुआ कहता है तीन रुपये; वे सवा रुपये से पौने दो रुपये तक पहुंचे हैं कि इसी वक्त दक्षिणपाड़ा के चौधुरी साहब उधर से बोल पड़े—दो रुपये में दोगे ? बस, हो गई शुरुआत।

" 'पैसे की गरमी दिखा रहे हो मियां साहब ?'

" 'ऐसा सोचते हो, तो यही सही। पैसा होता है, तो उसकी गरमी भी होती है।'

" 'अच्छा !'

" दोनों तरफ लोग इकट्ठे हो गए। जबानी बातों से हाथापाई, फिर लाठी, भाला, बल्लम। आध घण्टे के भीतर पांच जख्म, एक खून।"

मैं बोला, "यह सब तो मालूम ही नहीं था।"

"कैसे जानेंगे ? हम लोगों की तरह गांवों में तो रहना नहीं पड़ता। डिस्ट्रिक्ट टाउन के बाहर तो किसी दिन पैर रखा नहीं।"

"सो तो नहीं रखा, मगर इन सब चीजों को लेकर तो मुझे भी घर चलाना पड़ा है।"

" आपको मिली है तैयार फसल। उसके पीछे जो जटिल क्रिया-कलाप है—बीज संग्रह करने से लेकर फसल घर लाने तक—उसकी तो हवा तक आपके शरीर से नहीं लगी। वह सब तो इस पुलिस के सिर पर है। छोड़ो। अब आगे सुनिए।

" छिपवाले लोग जब उस बड़ी नाव पर लपककर पहुंच गए, तो व्यापारी लाठी, भाले आदि लेकर तनकर खड़े हो गए। बड़ी-बड़ी नदियों में होकर देश-देशांतर घूमना पड़ता है, इसलिए यह सारा सरंजाम रखना पड़ता है। मगर डकैत लोग दल में भारी थे, उनके हथियार भी मारात्मक थे। नतीजा यह कि इन लोगों में से एक तो साथ ही साथ खत्म और दो-तीन जख्मी। बाकी जो थे, नदी में कूद पड़े। उन्हींमें से एक व्यक्ति किसी तरह तैरकर पार पर पहुंच गया। गोपी वर्मन के आस-पास ही उसका घर था। रंग-रोगन चढ़ा होने के बावजूद गले की आवाज सुनकर उसे पहचान लिया था। पूरे एक दिन का रास्ता चलकर किसी तरह थाने में पहुंचकर खबर दी।

" गोपी का पता नहीं चल रहा था। पुलिस ताक लगाए बैठी थी। कोई पन्द्रह दिन बाद घर लौटते ही उसे पकड़कर हाजत में रख दिया। माल-पत्र, रुपया-पैसा कुछ नहीं मिला। जिस आदमी ने खबर दी थी, वह भी कुछ दिन बाद मुकर गया। गांववालों ने डरा दिया—गोपी के विरुद्ध 'साक्षी दी' तो 'बाण मार देंगे'। बाण मारना किसे कहते हैं, जानते हैं ?"

"सुना तो है, पर क्या होता है, ठीक मालूम नहीं।"

" एक तरह का मंतर है, जिसे लक्ष्य कर यह कहा जाता है, उसकी और रक्षा नहीं, तीन रात-दिन पूरे होने से पहले ही उसका सारा कुनबा मुंह से खून निकलने के कारण खत्म हो जाएगा।···अतः फरियादी और खोजने पर भी नहीं मिला।

" साक्षी नहीं, माल नहीं, मामला चलेगा किसपर ? असामी को हाजत में ज्यादा अटकाए नहीं रखा जा सकता। रिवर पुलिस के इन्स्पेक्टर कालीप्रसाद मुखर्जी स्वयं ही जांच कर रहे थे। अभी-अभी पदोन्नति हुई थी। आशा कर रहे थे, गोपी बर्मन को फांस लिया तो रातोंरात कन-फरमेशन हो जाएगा। और यह आशा मन में ही नहीं रखी, एक साक्षी हाथ में आते ही इष्टमित्रों के बीच बिखेरनी शुरू कर दी। इसीलिए आप समझ रहे होंगे, उन्हें बड़ी मुश्किल का सामना करना पड़ा। हाकिम के हाथ-"र पकड़कर किसी तरह और चौदह दिन जमानत बंद रखने की व्यवस्था की। फिर उसी रात लांच लेकर असामी के गांव की ओर रवाना हुए।

" पहले कई दिन तो तरह-तरह के लोगों से खोज-खबर लेने की चेष्टा करते रहे। देखने में आया कि आस-पास के लोगों में से बर्मनों से कोई खास खुश नहीं था। मगर असल बात पर सभीके मुंह बंद। तंत्र-मंत्र के आगे पुलिस की क्या गिनती ? इंटेरोगेशन के नाम पर कालीप्रसाद ने छाट-छाटकर किसी-किसी पर दो-चार जो डोज मारे, उन्हें हलका नहीं कहा जा सकता। मगर हजार भी हों तो क्या, बाण मारने की तुलना में वे कुछ भी नहीं। और कहीं कुछ हाथ नहीं पड़ा तो अन्त में सुबल को जा पकड़ा। वह तो जैसे दैत्यकुल में प्रह्लाद ! बाप की धारा से बिलकुल अलग। बचपन से ही जड़भरत की तरह ! गले में तुलसी

माला, सिर पर लंबे बाल। दिन का वक्त खेतीवाड़ी में काटे, रात को नाम-संकीर्तन करे। बाप को उससे विशेष कुछ लेना-देना नहीं। वह भी बाप की कोई खोज-खबर नहीं रखता। वह तो वरन् मन ही मन उसे घृणा करता है। सिर्फ लड़के के साथ ही नहीं, अपनी स्त्री के साथ भी गोपी का उठना-बैठना बहुत ही कम होता है। वह बेचारी अपने तरह-तरह के असुख-विसुख लिए परेशान रहती है। सारी साल प्रायः लेटी ही रहती है। गृहस्थी चलाती है लड़के की बहू, आपकी बनानी। ससुर के साथ जो कुछ सम्पर्क है, उसीका है, मगर उसका असली व्यवसाय क्या है, इस विषय में ठीक-ठीक उसे भी पता नहीं।

" कालीप्रसाद ने सुबल से छूटते ही पूछा, 'तेरा बाप रुपये-पैसे, गहने कहां रखता है ?'

" 'वह तो जैसे आसमान से आ गिरा, 'मुझे क्या पता ?'

" 'कहां दबा पड़ा है, दिखा दे। किसीसे कुछ नहीं कहूंगा।'

" 'पता हो तो दिखाऊं ?'

" 'तो समझ ले, तेरा बाप वापस नहीं आएगा।'

" सुबल चुप हो गया। बाप के वापस आने न आने को लेकर उसे कोई विशेष दुश्चिन्ता हो, ऐसा नहीं लगा। कालीप्रसाद बोला, 'तू नहीं जानता, तेरी मां निश्चय ही जानती है।'

" 'मां ! हारी-बीमारी से ही फुर्सत नहीं। रुपये-पैसे का हिसाब कब रखगी ?'

" 'अच्छा, अपनी बहू को बुला। उससे एक बार पूछकर देखता हूं।'

" बनानी को बुलाया गया। लंबे घूंघट में सिर हिलाकर बताया कि उसे कुछ मालूम नहीं।

" अब तो कालीप्रसाद बौखला उठा। एस० पी० को कहकर आया है, जैसे भी हो, गोपी को फंसाने लायक माल-मसाला जुटाकर फिर लौटेगा। सिर्फ चौदह दिन का समय है। इसमें से सात-आठ दिन बीत गए। कानून लेकर और कहां तक चलेगा ? इस बार आखिरी अस्त्र छोड़ा। पड़ोस में किसी-किसीसे सुना था कि लड़के की अपेक्षा बहू के साथ ही बूढ़े की तालमेल ज्यादा बैठती है। इन्हें खुद देखकर भी लगा कि पागल-

सा मोटू लड़का तो असल में भला आदमी है, वहू बदमाश है। वहीं सिर है। कान खींचते सिर आ जाए, इस सिद्धांत को याद कर बहू के सामने ही सुबल को ले बैठा। शुरू हुई धुनाई। बाद की घटना कालीप्रसाद के ही शब्दों में सुनाता हूं :

" 'यह सब हम लोगों के लिए कोई नई बात नहीं। आपने भी की है, मैंने भी कम नहीं की। बराबर देखता आया हूं। घर के आदमियों को दो-चार घूसे-थप्पड़ मारे नहीं कि औरतें भाग जाती हैं, अथवा कमरे का दरवाजा बंद कर रोना-धोना शुरू कर देती हैं। ऐसी स्थिति में यदि उन्हें सामने रहने को बाध्य करें तो दौड़कर आकर पैर पकड़ लेती हैं—और मत मारिए बाबूजी ! यहां भी यही आशा करता था मगर जो देखा, उससे बड़ा ताज्जुब हुआ दादा ! थोड़ी देर उदास खड़ी रही। इसके बाद जो काड किया, वह आप सोच भी नहीं सकेंगे। एक उछाल में आगे बढ़कर छोकरे को आड़ में लेकर खड़ी हो गई। कहां गया वह घूंघट ! एकदम मेरी नाक के ऊपर उंगली उठाकर इस तरह से गोया कि हुक्म दे रही हो, बोली—मारधाड़ नहीं कीजिए। गलती की हो तो चालान कर दीजिए।'

" कालीप्रसाद तो एकदम स्तब्ध। वाकई, सोच नहीं सकते। जमाना भी तो देखिए ! सन् सत्रह-अठारह की बात है। अभी गांधी-युग शुरू नहीं हुआ था। अंग्रेज सरकार का पुलिस-युग था। और वह लड़की भी कोई पढ़ी-लिखी शहरी लड़की नहीं थी, ठेठ गांव के किसान की निरक्षर बहू थी। दल-दलवाले इलाके का गांव। मैप में बांगला देश होते हुए भी, असल में उसके साथ इस गांव का कोई सम्पर्क नहीं। स्वदेशियों की छाया भी वहां किसीने नहीं देखी—उनके कार्यकलापों की एक छोटी-सी लहर तक उसके इर्द-गिर्द नहीं पहुंची।

" कालीप्रसाद के चरित्र में और जो भी हो, औरतों को लेकर कोई पक्षपात नहीं था। दुर्बलता तो बिलकुल नहीं। विस्मयभाव दूर होते ही उसने एक धक्के में बहू को अलग कर सुबल को गर्दन पकड़कर आगे खींच लिया। धीरे से हंसकर बोला, 'चालान ? अच्छा, वही करता हूं। तुम्हारे सामने ही करता हूं।'

" दो सिपाहियों को वनानी की दोनों तरफ खड़ा कर दिया, ताकि वह चली न जाए, और एक ढाई मन के जमादार को एक विशेष इशारा कर हुक्म दिया, 'लैफ्ट-राइट चलाओ।' जमादार ने सुवल को ढकेलकर दीवार से सटा दिया और अपने नाल-लगे वूट से उसका वायां पैर दवा दिया। उसके चीखते ही वूट उस पैर से उठाकर दायें पैर पर रख दिया। इसीका नाम है लैफ्ट-राइट।"

भूतनाथ दरोगा का 'कविराजी मुष्टि-योग' मैं जानता था। 'लैफ्ट-राइट' की वात यह पहली वार सुनी। मैं वोला, "क्या यह भी आपका आविष्कार है ?"

"नहीं, यह कालीप्रसाद मुखर्जी का पेटेण्ट है।"

"वह भला आदमी आपको वहुत पीछे छोड़ गया। खैर, फिर क्या हुआ, वताइए।"

" एक वार वायां पैर, उसे छोड़कर फिर दायां—अंधाधुंध नहीं, कायदे से मार्च की ताल पर। सुवल मदद के लिए चीख रहा है, और उसके साथ होड़-सी करती भीतर के किसी कमरे से उसकी मां चीखती जा रही है। वुढ़िया गठिया के कारण पंगु है, हिलने की क्षमता नहीं। वनानी के मुंह में वोल नहीं, आंखों में एक आंसू नहीं। स्वामी के पैरों की ओर टकटकी वांधे देख रही है। कुचले जाने से खून से सन गए हैं। वनानी ने हठात् मुंह उठाकर देखा। आंखों के भीतर से आग-सी वरस पड़ी। दोनों तरफ खड़े सिपाही कुछ समझें, इससे पहले ही वह तीर की तरह भाग उठी। उन लोगों के दोनों तरफ से पकड़कर खींच लेने से वह अधिक दूर नहीं जा सकी। वहीं से अपना वायां पैर वढ़ाकर जितना जोर लगा सकती थी, लगाकर ढाईमनी की जांघ के पिछले भाग में लात जमा दी।

" कालीप्रसाद का काम अव तक इकतरफा था। प्रवोकेशन के अभाव में थोड़ी असुविधा हो रही थी। अव किसी तरह की कोई वाधा न रही। चालान वाला प्रस्ताव वनानी ने ही रखा था, उसका प्रयोग इसीपर किया गया। ऐसी-वैसी वात नहीं थी। 'असाल्टिंग ए पुलिस आफिसर'! इससे भी ज्यादा मारात्मक अपराध—'सरकारी कर्मचारी

को काम के बीच बाधा डालना' ! ३२३ के साथ ३५३ ।

"गोपी वर्मन के घाट से थोड़ी-सी दूर रिवर पुलिस की लांच पहले से ही लंगर डाले थी । बनानी को गिरफ्तार कर फिलहाल वहां ले जाया गया । ऐसा डैन्जरस असामी, जो इतने पुलिस वालों की आंखों के सामने उन्हींके एक आदमी को लात मार सकता है ! आम्र्ड् पुलिस के संरक्षण को छोड़कर और कहीं रखना निरापद नहीं । विशेष कर बरसात की रात । घर भी गांव के एक छोर पर है । दो तरफ बाग, पीछे मैदान, सामने नदी । भाग गई, तो खोज पाना मुश्किल ।

"जनमानवहीन विशाल नदी के बीच कालीप्रसाद की लांच में उसकी वह रात किस तरह कटी, यह बिना बताए भी चलेगा । वह इतिहास, आपने उसके नामकरण-प्रसंग में जो बात कही थी—'रहस्य का अंधकार'—उसीके नीचे छिपा रहे तो ठीक ।"

न जाने क्या सोचकर मैंने हठात् प्रश्न किया, "आपने उसे देखा है ?"

"देखने में कैसी है, यह जानना चाहते हैं ? इस जगह वह प्रश्न अवातर है । वह स्त्री है, उसके शरीर में यौवन है—स्त्री-जाति के चरम सर्वनाश के लिए क्या ये दो फैक्टर ही काफी नहीं ?"

इस प्रश्न का कोई उत्तर मैं नहीं दे सका । भूतनाथ बाबू ने अपनी कहानी का छिन्न सूत्र फिर पकड़ लिया :

" 'पथि नारी विवर्जिता,' यह उक्ति शायद चाणक्य पंडित की है । कालीप्रसाद ने अब इसी शास्त्र-वाक्य का आश्रय लिया । अर्थात् जो हो गया, हो गया, अब और इस आफत को खींचकर सदर ले जाना बुद्धिमानी का काम नहीं । केंचुआ खोदते-खोदते अगर सांप निकल आए, तो सिर की रक्षा कौन करे ? अतएव दिन निकलते न निकलते दो सिपाही उसे पकड़कर उसके वनालय के एक कोने में डालकर चले आए । इसके थोड़ी देर बाद ही देखने में आया कि वह रौबीला जल-पुलिस का दल उस साधारण-सी औरत के बायें पैर की लात चुपचाप हजम कर पूरी गति से लाच दौड़ाए शहर की ओर चला जा रहा है । कालीप्रसाद जिस उद्देश्य से आया था और जिस मामले की सीढ़ी चढ़कर ऊपर पहुंचने का सपना देख रहा था, उन दोनों ही चीजों को बीच रास्ते छोड़कर उसे

जाना पड़ा।

"कालीप्रसाद ने गलती की थी। उसे आशंका थी कि वनानी उसे फंसा देगी। यह अलहदा जात है, वह समझ नहीं पाया। ये लोग नालिश नहीं करतीं। अपने लांछन की बात दूसरों के आगे खोलकर दया की भीख मांगना इनके स्वभाव में नहीं। कानून का आश्रय नहीं लेती, कानून अपने हाथ में ले लेती हैं। ये लोग अत्याचार का एकमात्र प्रतिकार जानती हैं, जिसका नाम है प्रतिशोध। सदर ले भी जाते, तो वह ऊपर वालों के दरबार में रोना लेकर नहीं बैठती, और न फरियादी के कठघरे में न्यायप्रार्थी होकर खड़ी होती।

"यहां भी वह किसी आत्मीय या प्रतिवेशी के द्वार पर जाकर खड़ी नहीं हुई। रात के अंधकार में क्या घटित हुआ नहीं हुआ, उसके ऊपर एक और मोटा काला परदा डाल दिया। स्वयं का लांछन तो है ही, दैहिक यंत्रणा को भी उसने कलेजे में दबा लिया। गोया कि कुछ नहीं हुआ, इस भाव से उसने अपने दोनों हाथों में दो मुश्किल रोगियों का भार रख लिया। सास तो पहले से ही अचल है। अब पति भी उसी श्रेणी में आ गया। पैरों के घाव रोज बढ़ते चले गए। साथ में ज्वर। डॉक्टर कहने से जिसका बोध होता है, वैसा वहां कहीं कुछ नहीं, यानी उस वक्त नहीं था। कविराज वर्ग का एक व्यक्ति था। उसका एकमात्र संबल था जड़ी-बूटियां। शहर के अस्पताल में ले जाने की बात ही नहीं उठती। गांववाले जानते थे कि वहां जाकर वापस कोई नहीं आता। फिर ले भी कौन जाए? पूरे वेग से वर्षा शुरू हो गई है। नदी की तरफ देखा तक नहीं जाता। नावों का आवागमन बंद है।"

"आसपास उसका कोई अपना नहीं था?"

"शायद था!" भूतनाथ ने धीमे से हंसकर कहा, "मगर पहले ही कह चुका हूं, गोपी के साथ किसीका भी ऐसा कुछ मेलभाव नहीं था। इसके अलावा फिर उस दिन जो काण्ड हो गया। गांव के लोग मुझसे-आपसे कहीं ज्यादा बुद्धिमान हैं। वे जानते हैं, बाघ छूने से अठारह घाव, पुलिस छूने से अठारह तीया चौवन! अतएव शतहस्तेन—

"वनानी दिन-भर काम में लगी रहती है। रात होते ही कान खड़े

कर लेती है, न जाने कब ससुरजी आकर चुपके से आवाज दे बैठें। बहुत रात गए नींद एकाएक टूट जाती है, शायद वे आ गए। झटपट उठकर आती है, नहीं, कोई नहीं। इस तरह दिन पर दिन बीत गए। गोरी नहीं आया। जेल से छुट्टी मिली कि नहीं, यह खबर भी किसीने आकर न दी।

" कोई महीने-डेढ़ महीने बाद सुवल चल बसा। घावों में पस पड़ गया था। बदबू के मारे पास नहीं जाया जाता था। उसके कुछ ही दिन बाद गोरी आकर हाजिर! पुलिस ने मुकदमा नहीं चलाया। बेकसूर खलास। मगर जेल से निकलते ही सीधा नहीं आ सका। 'जरूरी काम' था। क्या 'जरूरी काम' था, यह किसीने जानना नहीं चाहा। बहू की खबर के विषय में बनानी प्रायः चुप ही रही। बुढ़िया ने जो कहा, वह भी चलते-फिरते। सुवल के संदर्भ में कालीप्रसाद की बात चली, तो गोरी बोल पड़ा—'ईश्वर के घर अंधेर नहीं। साला! मेरा तो सर्वनाश कर गया, पर खुद को भी आसानी से छुटकारा नहीं मिला। घूस के मामले में फंस गया था; नौकरी खतरे में आ गई। आखिर में डिग्रेड (पदावनत) हो गया। जल-पुलिस के इन्स्पेक्टर से कोतवाली का दरोगा। गुड़े के नाम पर पूछ नहीं, सिर्फ डंठल....' कहकर बूढ़े ने बुढ़िया के आगे उंगली उठा दी। बनानी पास ही जाने क्या कर रही थी। बात कान में पड़ते ही हठात् मुंह उठाकर पूछ बैठी, 'कौन-सी कोतवाली?'

" बहू के इस अज्ञान को देखकर गोरी को बड़ा मजा आया। हंसकर बोला, 'कोतवाली और कितनी होती हैं बेटी? शहर के अन्दर जो सदर थाना है, उसीका नाम कोतवाली।'

" 'ओ!' कहकर वह चली गई। बात उनके दिमाग में चक्कर खाने लगी।

" दो-एक दिन बाद रात में गोरी को एक बार उठना पड़ा था। बाग की तरफ से लौटकर आने पर चौंक उठा। बहू के कमरे का द्वार खुला है, भीतर कोई नहीं। कुछ देर इन्तजार किया। सोचा, शायद बाहर गई है। फिर लालटेन लेकर खोजने निकल पड़ा—बाग में, मैदान में, नदी के किनारे। कहीं कोई चिह्न नहीं।

" अगले दिन बात और छिपाई नहीं जा सकी। जो पड़ोसी अत्यन्त दुःसमय में भूलकर भी कभी दरवाजे पर आकर खड़े नहीं होते, वे ही अब दल बना-बनाकर आने लगे। हर तरह का विश्लेषण होने लगा। एक-दो लोगों ने जल में डूब जाने की सम्भावना भी व्यक्त की, पर अधिकांश लोगों ने उसे सरासर अस्वीकार कर दिया। बहुत-सी मजेदार कहानियां भी गढ़ी गईं---उसे कब, कहां, किसके साथ देखा गया है, कितने दिन से यह काण्ड चल रहा है, इत्यादि। गोपी चुप रहा। खोजने जाने वाली बात एक बार भी दिमाग में न आई हो, सो नहीं, मगर पंगु स्त्री को अकेली छोड़कर जाना असम्भव है इसलिए हो, चाहे यह सोचकर हो कि जिस बहू ने घर में रहना नहीं चाहा, उसे वापस लाने की चेष्टा करने से क्या लाभ, निकलना नहीं हुआ।"

यहां थोड़ा विराम, नाटक के बीच में जैसे इण्टरवल। इसके बाद भूतनाथ बाबू की भूमिका भी बदल गई। अब तक इस कहानी के साथ उनका सम्बन्ध प्रत्यक्ष नहीं था। पुलिस क्लब में बैठकर सिगरेट पीते-पीते कालीप्रसाद मुखर्जी की बहादुरी का जो बयान सुना, उससे शुरुआत हुई। उसके बाद विभिन्न सूत्रों से खबरों के जो कतरे उनके कान में पड़े, उन्हींको अपने दिमाग में जोड़जाड़कर मुझे सुना गए। परवर्ती अंश उनका स्वयं संग्रह किया हुआ है। वहां वे जांच करने वाले पुलिस आफीसर हैं। घटनाचक्र के किस मोड़ की वजह से उन्हें इस भूमिका में उतरना पड़ा, यह बात यथास्थान बताई जाएगी। फिलहाल एक बात कहनी जरूरी है। सरकारी दफ्तर में उन्होंने क्या रिपोर्ट दाखिल की थी, यह मुझे पता नहीं। मुझे जो मिली, उसका स्वर और प्रकृति अलहदा है। उसमें तथ्यों के साथ ऐसा और भी बहुत कुछ मिला है, जिसने सरकारी रिकार्ड में निश्चय ही स्थान नहीं पाया। ये सब चीजें सम्भव है, उनके निजी रिकार्ड-कक्ष के एकान्त में रखी हुई थीं। इतने दिन बाद वहां से धूल झाड़ने के बाद बाहर लाई गई तो पता चला कि आदमी का मन सिर्फ संग्रहकर्ता नहीं, स्रष्टा भी है। स्मृति के भंडार से तथ्यों का बोझ लाकर उन्हें सजाते वक्त उनमें जाने कब हृदय का रंग लग जाता है, शायद वह खुद भी नहीं जानता। इसलिए यदि कोई पूछ

बैठे—यह उन्हें कैसे पता चला, यह खबर उन्हें कहां से मिली, तो मुझे भी बाध्य होकर एक इसी उत्तर का आश्रय लेना पड़ेगा—मुझे पता नहीं।

बनानी नदी के गर्भ में नहीं कूदी थी, उसने छलांग लगाई थी उससे भी कहीं अधिक विपदसंकुल अनिश्चय के अतल में।

दस-ग्यारह साल की उम्र में वह एक बार मौसी के घर घूमने गई थी, शहर में। वहां उसके मौसा पंसारी की दुकान करते थे। पास ही एक पुलिस स्टेशन था। इतनी पुलिस उसने इससे पहले कभी नहीं देखी थी। मौसी कहती, 'वह कोतवाली थाना है। उधर कभी मत जाना।' वह निरापद दूरत्व से डरती-डरती उस निषिद्ध दुनिया की ओर देखा करती। शादी हुई बहुत दूर, सात समुद्र न सही, तेरह नदी पार। शहर-वास के वे कुछेक दिन और उससे जुड़ा वह अद्भुत शब्द—कोतवाली—मन की तलहटी में जाने कहां खो गए थे। एकाएक ससुरजी के मुंह से नये सिरे से सुनने के बाद यह नाम उसके खून को झकझोर गया। इस बार की कोतवाली ने उसे एकदम अलहदा और कहीं अधिक ऊंचे स्वर में आवाज दी। सिर्फ आवाज ही नहीं दी, दूर देहात में नदी-घाट और बागों से घिरे, गृहस्थ-वधू के स्नेह-भक्ति-कर्तव्य के बंधन में बंधे, उस एकदम परिचित जीवन के बीच से उसे उखाड़कर खींच लिया। कहां? यह सोचने का भी अवसर नहीं दिया।

मौसा नहीं रहे, मौसी अभी थी। बहन की लड़की को देखकर वह विशेष खुश नहीं हुई। एक अतिरिक्त व्यक्ति को खिलाने जैसी हालत भी उसकी नहीं थी। इस तरफ से बनानी ने उसे तसल्ली दी। वह एकदम खाली हाथ नहीं आई। नकदी तो विशेष कुछ नहीं थी, पर कुछ गहने अवश्य थे। बहुत-से प्रश्नों के उत्तर देने पड़े। उसके लिए वह तैयार ही थी। आश्रय मिल गया।

यह कोतवाली उसी तरह है, शायद थोड़ी-सी बड़ी हो गई है। दस वर्ष की उम्र में उसे लेकर जो बाधा-निषेध था, आज उनका दायरा और भी बढ़ गया है। उस वक्त वह आंखों से जितनी मर्जी देख लेती थी। उसे देखने की किसीको गर्ज नहीं थी। आज दूसरे की नजर से बचकर

वहां जाकर खड़ा होना बड़ा मुश्किल है। फिर भी जब भी मौका मिलता है, वह जाकर खड़ी होती है, एक विशेष आदमी की गतिविधि लक्ष्य करती है। इस तरह कुछ ही दिनों में बनानी समझ गई कि जिस तीव्र ज्वाला को कलेजे में लेकर उसने घर छोड़ा था, उसे शान्त करने का रास्ता उसके आगे खुला नहीं है। उसकी आंखें जिसका इतने पास रहकर अनुसरण कर रही हैं, वह असल में बहुत दूर है। फिर भी मन नहीं मानता। बीच-बीच में वह जब निराशा के कारण पस्त हो जाती है, ठीक उसी वक्त वह देखती है कि उसके प्रायः सामने से ही साइकिल चलाता वह निकल गया। कलेजे के भीतर उथल-पुथल होने लगती है। उसका हाथ स्वतः ही उसके कपड़ों के भीतर चला जाता है। स्पंदित हृत्पिण्ड से चिपटी हुई है एक चीज—कई साल पहले ससुरजी ने लाकर दी थी, उन्हींके किसी लुहार दोस्त की बनाई। कहा था, 'मुझे बाहर ही बाहर घूमना पड़ता है, लड़का बिलकुल भोंदूराम है, उसपर मुझे भरोसा नहीं। जंगल से घिरा घर है, न जाने किसके मन में क्या हो, इसे हाथ के पास रखो। दिन हो या रात, सोते समय तकिये के नीचे रखकर सोना।'

उस भयंकर रात को भी तकिये के नीचे ही था। एक बार काश, वह कमरे में जा पाती! पुलिसवालों ने रास्ता रोक लिया था, जाने नहीं दिया। निष्फल आक्रोश के मारे कलेजा फिर जल उठता, आंखों में रौंदे-कुचले गए क्षत-विक्षत पैर तैरने लगते हैं। एक दांतेदार सुअर उनपर उछल-कूद कर रहा है। बीच-बीच में दांत निकालकर उसकी तरफ देखकर हंस जाता है। वह और नहीं सह सकती। इसके बाद?

बाद के दृश्यों की बात सोचते ही सिर में आग लग जाती है। लांच के भीतर हलके से अंधकार से भरा वह छोटा कमरा। चारों ओर एक झुंड गिद्ध। वह निश्चय ही मर गई थी, और उसी मरी देह को लेकर और सोचा नहीं जाता। सिर के भीतर की नसें उलझ जाती हैं। उसमें हथौड़े की चोट की तरह सिर्फ ये तीन शब्द बोलने लगते हैं—प्रतिशोध लेना होगा, प्रतिशोध लेना होगा···

मौसी को संदेह हो गया, और दिन पर दिन वह बढ़ता गया। इस

वहां जाकर खड़ा होना बड़ा मुश्किल है। फिर भी जब भी मौका मिलता है, वह जाकर खड़ी होती है, एक विशेष आदमी की गतिविधि लक्ष्य करती है। इस तरह कुछ ही दिनों में वनानी समझ गई कि जिस तीव्र ज्वाला को कलेजे में लेकर उसने घर छोड़ा था, उसे शान्त करने का रास्ता उसके आगे खुला नहीं है। उसकी आंखें जिसका इतने पास रहकर अनुसरण कर रही हैं, वह असल में बहुत दूर है। फिर भी मन नहीं मानता। बीच-बीच में वह जब निराशा के कारण पस्त हो जाती है, ठीक उसी वक्त वह देखती है कि उसके प्रायः सामने से ही साइकिल चलाता वह निकल गया। कलेजे के भीतर उथल-पुथल होने लगती है। उसका हाथ स्वतः ही उसके कपड़ों के भीतर चला जाता है। स्पंदित हृत्पिण्ड से चिपटी हुई है एक चीज—कई साल पहले ससुरजी ने लाकर दी थी, उन्हींके किसी लुहार दोस्त की बनाई। कहा था, 'मुझे बाहर ही बाहर घूमना पड़ता है, लड़का बिलकुल भोंदूराम है, उसपर मुझे भरोसा नहीं। जंगल से घिरा घर है, न जाने किसके मन में क्या हो, इसे हाथ के पास रखो। दिन हो या रात, सोते समय तकिये के नीचे रखकर सोना।'

उस भयंकर रात को भी तकिये के नीचे ही था। एक बार काश, वह कमरे में जा पाती! पुलिसवालों ने रास्ता रोक लिया था, जाने नहीं दिया। निष्फल आक्रोश के मारे कलेजा फिर जल उठता, आंखों में रौंदे-कुचले गए क्षत-विक्षत पैर तैरने लगते हैं। एक दांतेदार सुअर उनपर उछल-कूद कर रहा है। बीच-बीच में दांत निकालकर उसकी तरफ देखकर हंस जाता है। वह और नहीं सह सकती। इसके बाद?

बाद के दृश्यों की बात सोचते ही सिर में आग लग जाती है। लांत्र के भीतर हलके से अंधकार से भरा वह छोटा कमरा। चारों ओर एक झुंड गिद्ध। वह निश्चय ही मर गई थी, और उसी मरी देह को लेकर और सोचा नहीं जाता। सिर के भीतर की नसें उलझ जाती हैं। उसमें हथौड़े की चोट की तरह सिर्फ ये तीन शब्द बोलने लगते हैं—प्रतिशोध लेना होगा, प्रतिशोध लेना होगा···

मौसी को संदेह हो गया, और दिन पर दिन वह बढ़ता गया। इस

कच्ची उम्र में यह लड़की अनाथिन बनी बैठी है; अकेली-अकेली कहां जाती है, कहां जा फंसेगी, किसे पता ? घर लौटते ही बनानी को ढेर सारे प्रश्नों का सामना करना पड़ता है। कभी कुछ, कभी कुछ कहकर वह बात टाल जाती है। एक दिन वह स्थान में छिपी चीज मौसी की नजर पड़ गई—ठीक उस वक्त, जबकि वह बाहर जाने से पहले कमर में लपेटकर उसे आंचल से ढक रही थी। बुढ़िया ने जोर देकर पूछा, "यह क्या है?" बनानी ने बात को हल्का करने की चेष्टा की, "तुम लोगों के इलाके में गुंडों का इतना उत्पात है, सावधान होकर चलना पड़ता है।"

"ये सब फालतू बातें छोड़।" मौसी ने झिड़ककर कहा।

बनानी को स्वीकार करना पड़ा कि एक विशेष व्यक्ति उसका लक्ष्य है। कौन है वह, यह अवश्य नहीं बताया। मौसी सिहर उठी, "अरी सत्यानाशी लड़की !" फिर स्पष्ट रूप से कह दिया कि ये सब धंधे लेकर उसके यहां नहीं रह सकती।

इसके अलावा एक और मुश्किल कुछ दिन से देखने में आ रही थी। मौसी की दुकान के कई ग्राहक (जिनमें थाने के भी दो लोग थे) इस लड़की पर विशेष नजर रखने लग गए थे। यहां रहना अब ही और सम्भव नहीं था। मगर कहां जाएगी, और उसका अभीष्ट तब ही कैसे पूरा होगा ?

मौसी के घर से चला जाना तय हो गया, सिर्फ दिन-मुहूर्त तय नहीं हुआ, ऐसी स्थिति में एक दिन तीसरे पहर नदी पर हाथ-पैर धोते वक्त एक लड़की से मुलाकात हो गई। थोड़ा मेलजोल भी हो गया। दो दिन बाद पीछे से सुनाई पड़ा, वही लड़की शरीर रगड़ते-रगड़ते अपनी एक संगिनी से कह रही है, "काली दरोगा की बात सुनी ? मदना को तलाक देकर सुखा को पकड़ लिया। यह आदमी भी धन्य है बाबा ! दो-दो दिन बाद स्वाद बदले बिना काम ही नहीं चलता।"

"अच्छा ही तो है। एक दिन तेरा भी नंबर आएगा।"

कहकर संगिनी हंस पड़ी। वह और भी कुछ कहने जा रही थी, बनानी को देखकर रुक गई। बनानी समझ गई, ये कैसी लड़कियां हैं। फिर भी थोड़ा-बहुत जो संदेह था, उसे दूर करने के लिए उसने अपनी

नई सहेली के साथ उसके घर घूम थाने का प्रस्ताव रखा। सहेली राजी नहीं हुई, तरह-तरह के वहाने कर वात टाल गई। इसके वाद वे दोनों शरीर की धुलाई कर कुछ दूर चली गईं, तो वनानी छिपकर उनके पीछे चल पड़ी। गृहस्थों की बस्ती छोड़कर वाजार, उसके अंतिम छोर पर पतली-सी गली में एक वस्ती। वे दोनों उसमें घुस गईं। उस वक्त वहां भीड़ नहीं थी, मगर वनानी को यह जानना वाकी न रहा कि वह कुछ देर और वहां खड़ी रहे, तो उसे सिर्फ ये ही नहीं, इनके साथ और वहुत-सी देखने को मिलेंगी, जो सुवह की उतारी गुड़मुड़ी हुई साड़ियां पहन-कर चेहरों पर पालिश और आंखों में काजल लगाए गली के किनारे एक-एक कर आकर खड़ी हो जाती हैं। और थोड़ी रात होने पर दो-दो दिन वाद स्वाद वदलने वाले उन विलासी महामान्य व्यक्ति से भी शायद मुलाकात हो जाए, जो आज उसके जीवन का एकमात्र लक्ष्य है, जिसके लिए उसकी समस्त वासनाएं खौल रही हैं।

घर लौटकर उस रात उसने कुछ नहीं खाया, सारी रात आंखों की पलकें एक नहीं कीं, उठ-उठकर गिलास पर गिलास सिर्फ पानी पीती रही। दूसरे दिन सुवह होते ही कपड़ों की पोटली हाथ में लिए मौसी के पास जाकर वोली, "मौसी, मैं चलती हूं।"

"किस चूल्हे में, सुनूं तो?"

"देखती हूं, कहां कौन-सा चूल्हा मिलता है।" कहकर और नहीं रुकी।

वे दोनों लड़कियां निश्चय ही एकदम अवाक् हुई होंगी। शायद समझाने की चेष्टा भी की थी, "अव भी कहती हैं, लौट जाओ। यह बड़े कष्ट का जीवन है।" फिर भी घरवाली की ओर से स्वागत-सत्कार में कमी नहीं थी। कुछेक गहने उस वक्त भी थे। उनके वल पर उन्हींके वीच एक वहुत अच्छे कमरे में ही स्थान मिल गया। साथ ही अच्छे कपड़ों का एक सेट भी पाने में सफल रही।

मौसी ने खवर लिए विना नहीं छोड़ा। उसकी दुकान के जिस लड़के के मन में रंग लग गया था, वही खवर लाया। वुढ़िया की भारी वीमारी के वहाने एक रोज दोपहर को उसे वुला लाया और मुलाकात

भी करा दी। मौसी ने दांत भीचकर कहा, "तेरी मौत क्यों नहीं आई?"

"मौत तो हो गई मौसी," बनानी के चेहरे पर मृदु हास्य की रेखा दिखाई दी, "बहुत पहले ही हो गई।"

मौसी नहीं समझी, "इसका मतलब?"

"मतलब तुम नहीं समझोगी। मैं उसी दिन मर गई। यह तो उसकी चिता है।" कहते-कहते उसकी आंखों से भी तीव्र ज्वाला छिटक पड़ी।

एक-दो दिन नहीं, पूरे तीन महीने। वह कैसी कठिन परीक्षा थी! चेहरे पर रंग घिसकर रोज शाम को दरवाजे के आगे जाकर खड़ा होना पड़ता है। कब आकर किसी और कमरे में चला जाए, कौन जानता है? मगर वह नहीं आता, आते हैं दूसरे आदमी। उन्हें नहीं फंसाया जा सकता। भीतर बुलाकर हाथ-पैर पकड़कर कैसे-कैसे काण्ड कर आत्म-रक्षा करनी पड़ती है। साथ वाली मुंह टेढ़े कर कहती हैं, "चोचलेबाज! नाचना और घूंघट!" घरवाली कहती है, "इतनी छाटी-छांटी करेगी तो तेरा चलेगा कैसे?"

बनानी चुप रहती है। उसकी बात किसीको बताने की नहीं। कैसे कहेगी—सभीकी नजरों में वारांगणा होते हुए भी उसे दुनिया में सिर्फ एक ही पुरुष की जरूरत है?

इस बीच एक-दो दिन वह न आया हो, सो नहीं; मगर हो सकता है, वह बनानी के एक कमरे तक नहीं पहुंचा हो, अथवा उसकी ओर अच्छी तरह देखे बिना अन्य कमरे में घुस गया हो।

अन्त में, पूरे तीन महीने प्रतीक्षा करने के बाद दिखाई दी वह 'शुभरात्रि'! वांछित व्यक्ति सामने आकर खड़ा हो गया।

बनानी का कलेजा हिल गया, कहीं पहचान लिया? जबरन हंसी चेहरे पर बिखेरकर बोली, "खड़े क्यों हैं? अंदर आइए।"

"लगता है, तुम्हें कहीं देखा है।"

"भला मेरे ऐसे भाग्य कहां! इतने दिन से हूं, एक बार भी तो गरीब पर नजर नहीं पड़ी।...ओ मां, तो क्या रातभर यहीं खड़ी रहेंगे?" कहकर खिलखिलाकर हंस पड़ी।

"तुम तो बड़ी प्यारी बातें करती हो। हंसी बड़ी मीठी है।"

वनानी मुस्कराते हुए सिर झुकाकर पीछे हट गई। वह भी कमरे में घुस पड़ा।

अकस्मात् विद्युत-शिखा की तरह एक नंगा छुरा चमक उठा। मगर लगने से पूर्व ही सतर्क पुलिस की क्षिप्र सबल मुष्टि ने उसे छीनकर दूर फेंक दिया। निरुपाय नारी अपने विधाता-दत्त दो अस्त्रों—दांत और नाखून—को लेकर ही पूरी ताकत के साथ अपने शिकार पर टूट पड़ी।

बहुत रात गए सर्कल इन्स्पेक्टर भूतनाथ घोषाल ने पुलिस अस्पताल जाकर देखा कि कालीप्रसाद आंखें बंद किए पड़ा है। मुंह से बराबर कराहने की आवाज आ रही है। कपाल-गंडस्थल, चिबुक और कंधों पर खरोंचने-खसोटने की गहरी रेखाएं हैं। उनमें से खून टपक रहा है। डॉक्टर ने धीरे-धीरे सीने के ऊपर से कपड़ा उठाकर दिखाया। बहुत बड़ी जगह में दांतों के तीखे निशान हैं, बीच में जरा भी मांस नहीं।

सरकारी व्यवस्थानुसार हर तरह की चिकित्सा मिलने पर भी काली-प्रसाद को सुबल का रास्ता पकड़ना पड़ा। घावों में सेप्टिक हो गया था। मरने से कुछ दिन पहले भूतनाथ बाबू से कहा था, "दांतों और नाखूनों में निश्चय ही उस राक्षसी ने विष लगा रखा था।" भूतनाथ मुंह से कुछ नहीं बोले, मन ही मन कहने लगे—गलती करते हो भैया, ये लोग बाघिन की जात हैं, विष लेकर ही पैदा होती हैं, लगाना नहीं पड़ता।

दियासलाई जलाने की आवाज से चौंककर देखा कि भूतनाथ बाबू सिगार जला रहे हैं। आकाश की ओर देखकर बोले, "बरसात रुक गई है, अब चला जाए। कितने बजे हैं?"

मैंने उत्तर दिया, "वनानी का क्या हुआ?"

"पता नहीं। बहुत खोजी है। खोजना पड़ा है। साहब ने जांच मेरे ही हाथों में दी थी। मिली नहीं।"

थोड़ा रुककर बोले, "मिलती तो कालीप्रसाद की आखिरी खबर दे देता। सुबल की मृत्यु का क्षोभ थोड़ा तो दूर होता।"

"मुझे लगता है, वह जिन्दा नहीं ।"

अब यही प्रार्थना करता हूं । सुना है, मृत्यु के बाद आदमी प्रेतलोक में रहकर सभी कुछ जान सकता है। तब तो वह भी जान गई । आत्मा की कुछ तो तृप्ति हुई होगी, अवश्य ही यदि बाघिनियों में आत्मा जैसी कोई चीज होती हो तो ।

वनानी मुस्कराते हुए सिर झुकाकर पीछे हट गई । वह भी कमरे में घुस पड़ा ।

अकस्मात् विद्युत-शिखा की तरह एक नंगा छुरा चमक उठा । मगर लगने से पूर्व ही सतर्क पुलिस की क्षिप्र सबल मुष्टि ने उसे छीनकर दूर फेंक दिया । निरुपाय नारी अपने विधाता-दत्त दो अस्त्रों—दांत और नाखून—को लेकर ही पूरी ताकत के साथ अपने शिकार पर टूट पड़ी ।

बहुत रात गए सर्कल इन्स्पेक्टर भूतनाथ घोषाल ने पुलिस अस्पताल जाकर देखा कि कालीप्रसाद आंखें बंद किए पड़ा है । मुंह से बराबर कराहने की आवाज आ रही है । कपाल-गंडस्थल, चिबुक और कंधों पर खरोंचने-खसोटने की गहरी रेखाएं हैं । उनमें से खून टपक रहा है । डॉक्टर ने धीरे-धीरे सीने के ऊपर से कपड़ा उठाकर दिखाया । बहुत बड़ी जगह में दांतों के तीखे निशान हैं, बीच में जरा भी मांस नहीं ।

सरकारी व्यवस्थानुसार हर तरह की चिकित्सा मिलने पर भी कालीप्रसाद को सुबल का रास्ता पकड़ना पड़ा । घावों में सेप्टिक हो गया था । मरने से कुछ दिन पहले भूतनाथ बाबू से कहा था, "दांतों और नाखूनों में निश्चय ही उस राक्षसी ने विष लगा रखा था ।" भूतनाथ मुंह से कुछ नहीं बोले, मन ही मन कहने लगे—गलती करते हो भैया, ये लोग बाघिन की जात हैं, विष लेकर ही पैदा होती हैं, लगाना नहीं पड़ता ।

दियासलाई जलाने की आवाज से चौंककर देखा कि भूतनाथ बाबू सिगार जला रहे हैं । आकाश की ओर देखकर बोले, "बरसात रुक गई है, अब चला जाए । कितने बजे हैं ?"

मैंने उत्तर दिया, "वनानी का क्या हुआ ?"

"पता नहीं । बहुत खोजी है । खोजना पड़ा है । साहब ने जांच मेरे ही हाथों में दी थी । मिली नहीं ।"

थोड़ा रुककर बोले, "मिलती तो कालीप्रसाद की आखिरी खबर दे देता । सुबल की मृत्यु का क्षोभ थोड़ा तो दूर होता ।"

"मुझे लगता है, वह जिन्दा नहीं ।"

अब यही प्रार्थना करता हूं । सुना है, मृत्यु के बाद आदमी प्रेतलोक में रहकर सभी कुछ जान सकता है। तब तो वह भी जान गई । आत्मा की कुछ तो तृप्ति हुई होगी, अवश्य ही यदि बाघिनियों में आत्मा जैसी कोई चीज होती हो तो ।